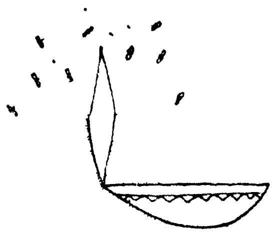


दाग़

और उनकी शायरी



सम्पादक
सरस्वतीसरन 'कैफ़'

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

द्वितीय संस्करण
फ़र्वरी, १९६०

मूल्य
डेढ़ रुपया

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली

मुद्रक
युगान्तर प्रेस
डफ़रिन पुल, दिल्ली

सूची

उर्दू है जिसका नाम हमीं जानते हैं 'दाग़'
हिन्दोस्तां में धूम हमारी ज़बां की है

ीवनी



नवाब मिर्ज़ा का जन्म २५ मई, १८३१ ई० को दिल्ली में लोहारू के नवाब ज़ियाउद्दीन ख़ां के भाई नवाब शमसुद्दीन ख़ां के यहां हुआ। नवाब मिर्ज़ा के पिता का साया बचपन ही में उनके सर से उठ गया था। कारण यह था कि शमसुद्दीन ख़ां की पत्नी (नवाब मिर्ज़ा ख़ां की माँ) अत्यन्त रूपवती और कुछ चंचल प्रकृति की महिला थीं। शमसुद्दीन ख़ां को यह ख़याल हो गया कि उनकी पत्नी का अनुचित सम्बंध ब्रिटिश गवर्नर-जनरल के दिल्ली-स्थित एजेंट मि० फ़ेज़र से है। यह कहना तो मुश्किल है कि उनका वास्तव में मि० फ़ेज़र से अनुचित सम्बन्ध था या नहीं, किन्तु मि० फ़ेज़र से उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध अवश्य थे। नवाब शमसुद्दीन इस बात को बर्दाश्त न कर सके और उन्होंने मि० फ़ेज़र की हत्या कर डाली। नवाब शमसुद्दीन ख़ां लाख सामंत वर्ग के हों, गवर्नर-जनरल के एजेंट की हत्या मामूली बात नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि नवाब शमसुद्दीन ख़ां के गले में फांसी की रस्सी १८३८ में पड़ गयी।

पति के फांसी पाने के बाद नवाब मिर्ज़ा की मां ने दिल्ली छोड़ दी। कुछ दिनों वे रामपुर में भी रहीं। किन्तु वे वहां पर किसी कारण जम न पायीं। इधर दिल्ली के आख़िरी बादशाह बहादुरशाह के युवराज मिर्ज़ा फ़तेहुल-मुल्क उर्फ़ मिर्ज़ा फ़ख़रू

उन पर आसक्त हो गये। उन्होंने किसी बहाने उन्हें बुला लिया और नवाब मिर्ज़ा की मां संभवत: १८४१ ई० में दिल्ली आकर लाल क़िले में रहने लगीं। उन्हीं के साथ नवाब मिर्ज़ा भी लाल क़िले में आ गये। १८४४ ई० में उनकी मां ने मिर्ज़ा फ़ख़रू से दूसरा विवाह कर लिया और ये लोग राज-परिवार के सदस्य हो गये।

अपनी माता के दूसरे विवाह के समय नवाब मिर्ज़ा ख़ां ('दाग़') की अवस्था तेरह वर्ष की थी। उन्होंने लाल क़िले के रास-रंगमय वातावरण में अपने को बिल्कुल खपा लिया। उनके दूसरे पिता मिर्ज़ा फ़ख़रू उन्हें बहुत मानते थे। उन्होंने उनको राजकुमारों के उपयुक्त शिक्षा दिलवायी। उन्होंने घुड़-सवारी और बांकपटा सीखा। प्रचलित रिवाज के मुताबिक़ उन्होंने सुलेखन (ख़ुशनवीसी) की भी शिक्षा ली। फ़ारसी की शिक्षा उन्होंने मौलवी ग़यासुद्दीन और मौलवी अहमद हुसेन से ली। कुछ अरबी भी पढ़ी। किन्तु पढ़ने-लिखने से अधिक उनकी रुचि कविता की ओर थी। लाल क़िले में उन दिनों शायरी की धूम रहती थी। मिर्ज़ा फ़ख़रू और बहादुरशाह दोनों शेख़ इब्राहीम 'ज़ौक़' के शागिर्द थे। बहादुरशाह ने नवाब मिर्ज़ा ख़ां 'दाग़' को भी 'ज़ौक़' के सुपुर्द कर दिया। 'ज़ौक़' ने भी इस प्रतिभाशाली शिष्य पर खूब मेहनत की। 'दाग़' ने पहली बार १६ वर्ष की अवस्था में लाल क़िले के मुशायरे में वह ग़ज़ल सुनाई जिसका मिसरा है : "निकाल अब तीर सीने से कि जाने-पुर अलम निकले"। इसकी बड़ी प्रशंसा हुई और 'दाग़' शायरी के मैदान में चल निकले।

रामपुर में

इसी हँसी-ख़ुशी, ऐश-आराम में दाग़ की जवानी ने आंख खोली। लेकिन दुर्भाग्य से १८५६ में उनके दूसरे पिता मिर्ज़ा फ़ख़रू हैज़े से मर गये। चुनांचे मां के साथ ही 'दाग़' को भी लाल क़िला छोड़ना पड़ा। इससे भी बढ़कर मुसीबत यह हुई कि अगले वर्ष ग़दर पड़ गया जिसमें हज़ारों मुसलमानों को दिल्ली छोड़कर भागना पड़ गया। 'दाग़' भी इस परेशानी में रामपुर दरबार में पहुंचे। रामपुर के तत्कालीन नवाब यूसुफ़ अली खां 'नाज़िम' स्वयं कवि और साथ ही बड़े गुण-ग्राहक थे। उनके दरबार में 'दाग़' ही नहीं लखनऊ के चोटी के कवियों 'अमीर', 'जलाल', 'मुनीर' आदि ने भी शरण ली थी। मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के लिए भी नवाब रामपुर के दरबार से वेतन बँधा हुआ था। नवाब ने 'दाग़' को युवराज क़ल्बे अली ख़ां का मुसाहिब नियुक्त कर दिया।

१८६५ ई० में नवाब यूसुफ़ अली ख़ां परलोकवासी हुए और नवाब क़ल्बे अली खां 'नवाब' गद्दी पर बैठे। उन्होंने 'दाग़' को अपना मोतमिदे-ख़ास नियुक्त किया और उनके सुपुर्द कारख़ाने, गाड़ी-ख़ाना, अस्तबल, फ़र्राश-ख़ाना, कंबल-ख़ाना और शुतुर-ख़ाना का प्रबंध कर दिया। वे नवाब के साथ हज यात्रा को भी गये और वहां अपनी प्रसिद्ध ग़ज़ल काबे के सामने बैठकर लिखी जिसका मतला यह है—"सबक़ ऐसा पढ़ा दिया तूने, दिल से सब कुछ भुला दिया तूने।"

'दाग़' रामपुर में १८८७ ई० तक रहे। यह तीस वर्ष का काल 'दाग़' के जीवन में कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पहली

बात तो यह है कि उन्हें यहां बहुत आराम मिला। यूं तो उनके जीवन में कठिनाइयों का समय लगभग नहीं के बराबर है, किन्तु रामपुर में उनकी प्रतिष्ठा को चार चांद लग गये क्योंकि काव्य-प्रसिद्धि के अतिरिक्त उनका राजकीय सम्मान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। फिर इसी अवधि में उनकी प्रसिद्धि कवि की हैसियत से देश-व्यापी हो गई। इसी ज़माने में उनके दो दीवान 'गुलज़ारे-दाग़' (१८७८ ई०) और 'आफ़ताबे-दाग़' (१८८४ ई०) प्रकाशित हुए। इसी अवधि में कलकत्ते की सुन्दरी वेश्या मुन्नीबाई 'हिजाब' से उनका प्रेम हुआ जो उनके अंत काल तक क़ायम रहा। मुन्नीबाई 'हिजाब' के प्रेम ही ने उनसे प्रसिद्ध मसनवी 'फ़रियादे-दाग़' लिखवाई। यह मसनवी भी १८८४ ई० में लिखी गई।

रामपुर के निवास-काल में 'दाग़' रामपुर ही में रहे हों ऐसी बात न थी। वे घूमना-फिरना बहुत पसंद करते थे। कई बार दिल्ली गये। 'ग़ालिब' ने भी अपने ख़तों में 'दाग़' के दिल्ली आने और रामपुर की ख़बरें देने का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वे अन्य स्थानों की सैर समय-समय पर करते रहे। मुन्नीबाई 'हिजाब' के निमन्त्रण पर वे लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, पटना आदि होते हुए कलकत्ता पहुँचे थे। इन सब स्थानों की यात्रा का उल्लेख उन्होंने 'फ़रियादे-दाग़' में किया है। प्रत्येक स्थान पर उनसे पहले उनकी ख्याति पहुंच चुकी होती थी, चुनांचे जहां जाते हाथों-हाथ लिये जाते। तात्पर्य यह कि रामपुर के निवास की अवधि में वे देश-व्यापी ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे।

निज़ाम के दरबार में

१८८६ में नवाब क़ल्बे अली खां का स्वर्गवास हो गया। रामपुर राज्य में कौंसिल की नियुक्ति हुई। लेकिन नये हाकिमों से 'दाग़' की न पटी। पटती भी कैसे? नवाब क़ल्बे अली खां जैसा गुण-ग्राहक तो हर एक हाकिम हो नहीं सकता। एक ग़ज़ल के मक़ते में 'दाग़' कहते हैं:—

रहे क्या मुस्तफ़ा आबाद में 'दाग़'
मज़े सारे थे वो ख़ुल्द-आशियां तक

चुनांचे १८८७ में वे दिल्ली वापस आ गये और कुछ दिन यहां रहने के बाद हैदराबाद गये। दो-तीन महीने वहां रहे। उनकी कलाकीर्ति तो पहले ही से वहां फैली हुई थी, इसलिए हैदराबादियों ने उनका अच्छा स्वागत-सत्कार किया। राजा गिरधारी लाल के द्वारा निज़ाम से भी भेंट हुई किन्तु इस भेंट का कोई फल न निकला। जून १८८७ में वे फिर दिल्ली आ गये और विभिन्न स्थानों का पर्यटन करते रहे। अप्रैल १८८८ में हैदराबाद के मन्त्री के निमन्त्रण पर वे दोबारा हैदराबाद आये और वहीं रहने लगे।

निज़ाम ने बुलाने को तो बुला लिया लेकिन फिर 'दाग़' को भूल ही से गये। लेकिन 'दाग़' ने वह दर नहीं छोड़ा। आखिरकार फ़रवरी १८९२ में 'दाग़' की याद आयी और रात के नौ बजे चोबदार निज़ाम की ग़ज़ल लेकर आया और इस्लाह (शुद्धि) के हुक्म के साथ ही सुबह दरबार में हाज़िर होने का हुक्म पहुंचाया। दूसरे दिन निज़ाम ने उन्हें अपना उस्ताद बनाया और उसी साल यह हुक्म हुआ कि उन्हें हैदराबाद

आगमन के समय से ४५०) मासिक वेतन मिले। १८९४ में दूसरी तरक़्क़ी हुई और १०००) मासिक वेतन मुक़र्रर हुआ। यह वेतन अंत समय तक मिलता रहा।

हैदराबाद में 'दाग़' का बुढ़ापा बीता और यद्यपि बुढ़ापा भी काफ़ी रंगरेलियों में बीता तथापि उनका घूमना-फिरना बंद सा हो गया। एक और उल्लेखनीय बात यह हुई कि १८९७ ई० में पत्नी की मृत्यु के बाद 'दाग़' ने फिर मुन्नीबाई को कलकत्ते से बुला भेजा। १९०२ ई० में वह आई और दो साल तक उनके पास रहकर फिर कलकत्ते चली गयी क्योंकि वह भी बला की तुनुक-मिज़ाज थी। फिर भी कहा जाता है कि 'दाग़' अपने अंत-काल तक कलकत्ते ही में 'हिजाब' के लिए वह मासिक वेतन भेजते रहे जो उन्होंने हैदराबाद में उनके लिए मुक़र्रर किया था।

आख़िरकार चार महीने तक पक्षाघात से पीड़ित रहने के बाद १७ फ़रवरी १९०५ को ७४ वर्ष की अवस्था में महाकवि 'दाग़' चिर-निद्रा में निमग्न हो गये।

दाग़ का व्यक्तित्व

'दाग़' 'जुर्रत' की भांति 'बदनाम' शायर हैं। डा० राम बाबू सक्सेना अपने 'उर्दू-साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं—"...उनके कुछ पद्य भद्र कानों से सुनने योग्य नहीं हैं और ऐसे समाज में गाये जा सकते हैं जहां रंडियों और पियक्कड़ों के जमघट हों। ऐसे पद्य केवल बाह्य रूप और प्रेम के द्योतक होते हैं और उनसे हृदय कंपित नहीं होता, न विचारों में प्रगति

पैदा होती है। ऐसे पद्य ऐसे प्रेम से सम्बन्ध रखते हैं जिसमें सच्चाई और आध्यात्मिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है।" (हिन्दुस्तानी एकाडेमी द्वारा प्रकाशित हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३३८)

उपर्युक्त कथन का विवेचन तो बाद में किया जायेगा, यहां पर उद्देश्य केवल यह दिखाना है कि 'दाग़' ऐसे ज़माने में हुए जबकि लोगों के सामने 'ग़ालिब' और 'मोमिन' द्वारा स्थापित प्रेम के ऊंचे आदर्श रखे जा चुके थे और लखनऊ की 'अंगिया-चोली' वाली शायरी भी समाप्त हो गयी थी। ऐसी स्थिति में 'दाग़' ने शृंगारिक काव्य का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया जिस पर नैतिकता की नाक-भौं चढ़नी स्वाभाविक थी। साथ ही कवि की हैसियत से उन्हें अपने जीवन-काल में ऐसी सफलता मिली जैसी अन्य किसी को नसीब नहीं हुई थी। यह बात कुछ असंगत-सी जान पड़ती है किन्तु वास्तव में इसमें कोई असंगति नहीं है। कविता का क्षेत्र सदाचार और नैतिकता के क्षेत्र से विस्तृत होता है। अच्छी कविता सदाचार और नैतिकता के साथ भी चल सकती है—हिन्दी में 'सूर' और 'तुलसी' इसके विशिष्ट उदाहरण हैं। किन्तु अच्छी कविता अक्सर सदाचार के बंधन तोड़ भी देती है। इसके बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं किन्तु यहां केवल 'देव' की ओर इशारा कर देना काफ़ी है; और संस्कृत में कालिदास भी नैतिकता की जकड़बंदियों में नहीं पड़े हैं।

तो फिर सच्ची कविता के लिए क्या चीज़ आवश्यक है? यह चीज़ सिर्फ़ एक है—अनुभूति की गहराई और उसकी

अभिव्यक्ति में ईमानदारी। जो भावना मनुष्य के हृदय में तीव्रता से उठे उसकी सफलता-पूर्वक अभिव्यक्ति ही कविता है, चाहे वह 'सूर' और 'तुलसी' की भक्ति हो, 'रहीम' की नीति हो, 'ग़ालिब' की स्वतंत्र दार्शनिकता हो, 'मीर' की करुणा हो, या 'जुर्रत' की वेश्या-वृत्ति हो।

'दाग़' के वर्णन में विषय की वास्तविकता और अनुभूति की गहराई अपनी चरम-सीमा को पहुंच गयी है। उनका विषय सीमित सही किन्तु जो कुछ उन्होंने कहा है वह इतने सच्चे दिल से कहा है कि हरएक पर उसका प्रभाव पड़ना लाज़िमी है। इस बात को और अच्छी तरह स्पष्ट करने के लिए उनके जीवन की बाह्य परिस्थितियों और उनके अपने स्वभाव की कुछ विशेषताओं की ओर इंगित करना आवश्यक है। तभी यह जाना जा सकता है कि उनकी कविता का मूल स्रोत कहां है और उनकी काव्य-धारा कहां-कहां से होकर बही है।

'दाग़' के जीवन और उनकी रचनाओं में पहला तथ्य जो दिखाई देता है वह उनकी सांसारिकता है। 'दाग़' धर्म के विरोधी न थे, उस ज़माने में कोई भी नहीं था; साथ ही वे 'ग़ालिब' की भांति धर्म के मुक़ाबिले में अपना निज का कोई गहन दर्शन भी नहीं रखते थे। फिर भी वे संसार को असार समझने के लिए एक मिनट को भी तैयार नहीं थे। संसार के सुखों का उन्होंने पूरा उपभोग किया। रुपये-पैसे की उन्हें कभी कमी नहीं रही। खाने के वे बहुत शौक़ीन थे और खाते भी बहुत थे। 'दाग़' के शिष्य मौलाना 'अहसन' मारहरवी के

कथनानुसार उनका दस्तरख़्वान बड़ा लम्बा-चौड़ा होता था। कपड़े भी बहुत भड़कीले पहनते थे और दिन में दो बार जोड़ा बदलते थे। घूमने-फिरने और लोगों से मिलने-जुलने का भी बहुत शौक़ था। भारत के लगभग सारे शहर उन्होंने देख डाले थे। गाना सुनने, ख़ासकर पक्का गाना सुनने, का बड़ा शौक़ था। अंत काल तक एक-दो गाने-वालियों को निजी तौर पर अपनी नौकरी में रखते रहे। रोज़ाना शाम को घंटे डेढ़-घंटे गाने की महफ़िल जमती। मालूम होता है कि गाने से उन्हें काफ़ी प्रेरणा मिलती थी क्योंकि अक्सर ऐसा होता था कि गाने के दौरान ही में उनकी काव्य-रचना होने लगती थी और इतनी तीव्रता और वेग से यह रचना होती थी कि दो-दो शागिर्द लिखते, फिर भी कुछ शे'र छूट जाते थे। 'दाग़' के शे'रों में जो मिठास और संगीत है वह संभवतः इसी संगीतमय वातावरण का प्रभाव है।

दूसरे शौक़ भी 'दाग़' को कम नहीं थे। उनके प्रेम-व्यापार का तो पूछना ही क्या है! इत्र का शौक़, पतंग-बाज़ी का शौक़, मेलों-ठेलों का शौक़—ग़रज़ इस संसार का कोई सुख उन्होंने नहीं छोड़ा था।

संसार और जीवन के प्रति उनका यह प्रेम निम्नलिखित शे'र से ज़ाहिर है :—

अपने दम को आदमी हरदम ग़नीमत जान ले
ख़ाक का फिर ढेर है बादे-फ़ना कुछ भी नहीं

यही नहीं, वे संसार को स्वर्ग से भी बढ़कर समझते हैं :—

दुनिया के देखने के लिए आंख चाहिए
जन्नत की सैर से है सिवा इस मकां को सैर
क्यों आदमी को आलमे-बाला की हो हविस
बढ़कर नहीं ज़मीन से कुछ आसमाँ की सैर

'दाग़' न केवल बाह्य उपकरणों से जीवन को सुखी बनाते थे अपितु उनके स्वभाव में भी कुछ ऐसी ख़ूबियाँ थीं जो एक ओर तो उन्हें सर्वप्रिय बनाये हुए थीं और दूसरी ओर जिन्होंने स्वयं उनके जीवन को बहुत सुखी बना दिया था, जिसके कारण उनकी कविता में हर जगह खिले हुए फूलों की ताज़गी दिखाई देती है। सबसे पहले जो चीज़ उनके स्वभाव में दिखाई देती है वह उनकी मिलनसारी है। उनका बाल्यकाल और किशोर-अवस्था लाल क़िले के वातावरण में बीती। यही वह अवस्था होती है जब परिस्थितियों का मनुष्य के स्वभाव पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। उर्दू के दो कवियों में बचपन का यह प्रभाव उनकी जीवन-भर की कृतियों में दिखाई देता है। एक ओर 'मीर' हैं जिन्हें दस वर्ष की अवस्था से लेकर पूरी जवानी मुसीबतों के चंगुल में गिरफ़तार रहना पड़ा था। फल-स्वरूप उनकी कविता में जो दर्द और टीस है वह शायद 'फ़ानी' को छोड़कर ('फ़ानी' बेचारे को तो सारी उम्र निराशाओं और दुखों से दोचार होना पड़ा था) और किसी कवि को नसीब न हुई। दूसरी ओर 'दाग़' हैं जिनका बचपन और जवानी हँसी-ख़ुशी और राग-रंग में बीती तो उसने उनके स्वभाव पर ऐसा प्रभाव छोड़ा जो सारी उम्र उन्हें प्रसन्न रखता रहा।

मिलनसारी भी उनके स्वभाव में बचपन से आ गयी थी। मित्रों से मिलने-जुलने का उन्हें हमेशा शौक़ रहा और उनकी मित्रता का क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत रहा—हर जगह उनके दोस्त मौजूद थे। उनके शागिर्दों की तादाद भी बड़ी भारी भी—लगभग दो हज़ार शागिर्द थे। रोज़ाना की डाक बड़ी भारी होती थी। फिर यह भी नहीं कि उनसे लोगों की बात-चीत का विषय काव्य-चर्चा ही रहता हो। जवानी की रंगरेलियों का तो कहना ही क्या है बुढ़ापे में भी, मरने के दो ही तीन वर्ष पूर्व, अपनी पुरानी प्रेमिका मुन्नीबाई 'हिजाब' और नवाब हसन अली खां और हैदराबाद के युवराज के साथ पतंग-बाज़ी, दावतें, नाच-गाना वग़ैरा खूब हुआ करता था। अपनी निजी बातों पर अपने शागिर्दों और साथियों से मश्वरे करना और अपनी पत्नी से होने वाली नोक-झोंक को भी रस ले-लेकर अपने शागिर्द दोस्तों को सुनाना—ये बातें 'दाग़' के स्वभाव में अंत तक रहीं। आत्म-सम्मान की भावना कुछ कम न थी—रामपुर तो छोड़ ही इसी कारण दिया कि वहाँ उनके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचने लगी थी—किन्तु 'मीर' की तरह झगड़ालू नाम को न थे, बल्कि 'ग़ालिब' की भांति हमेशा मित्रों से मिलने-जुलने के इच्छुक रहते थे। कहते हैं :

'दाग़' दुश्मन से भी झुककर मिलिए
कुछ अजब चीज़ मिलनसारी है

● 'दाग़' की एक विशेषता उनकी हंसने-हंसाने की आदत भी थी। वे जीवन को हंस-बोलकर काटना चाहते थे। कहते हैं :—

दिन गुज़ारे उम्र के इंसान हंसते बोलते
जान भी निकले तो मेरी जान हंसते बोलते

उनके मित्र और शिष्य इस बात के गवाह हैं कि 'दाग़' हंसने-हंसाने में बेजोड़ थे। उनके शिष्य हज़रत 'नूह' नारवी लिखते हैं कि एक रोज़ 'दाग़' मग़रिब की नमाज़ (संध्या-कालीन नमाज़) पढ़ रहे थे। उनके शिष्य श्री मुस्तजाब ख़ां 'ख़ुल्क़' आये और उन्हें नमाज़ पढ़ते देखकर लौटे जा रहे थे कि 'दाग़' ने उन्हें बुलवाया और बोले कि आप लौटे क्यों जा रहे थे, मैं नमाज़ ही तो पढ़ रहा था 'लाहौल' तो नहीं पढ़ रहा था। (लाहौल शैतान को भगाने के लिए पढ़ा जाता है।)

'नूह' साहब ही ने एक दूसरा क़िस्सा बयान किया है। यह उन्हीं के शब्दों में सुनिए: "मिरज़ा मुज़फ़्फ़र हुसेन साहब 'बारक़' एक मौक़े पर उस्ताद ('दाग़') से फ़रमाने लगे कि "आप बड़ी आसानी से शे'र कह लेते हैं। मुझे तो शे'र कहने में बड़ी तकलीफ़ होती है। पान बनवा कर दाहिने-बायें ख़ासदान रखता हूँ। चार-पांच चिलमें हुक़्क़े की भरी जाती हैं। पलंग पर लेटकर करवटें बदलता हूं तो शे'र कहता हूं।" यह सुनकर हंसते हुए 'दाग़' साहब ने फ़रमाया कि "आज मालूम हुआ तुम शे'र कहते नहीं शे'र जनते हो।"

'दाग़' का ऐतिहासिक स्थान

उर्दू काव्य में 'दाग़' के स्थान को समझने के लिए उर्दू कविता के विकास पर एक सरसरी नज़र डालना ज़रूरी है। 'वली' दकनी से पहले उर्दू में लोग छुटपुट कविताएं कर तो लेते थे

किन्तु उनका ध्यान फ़ारसी ही की ओर रहता था। 'वली' ने सबसे पहले, या लगभग सब से पहले, उर्दू में (जिसे उस समय 'रेख़्ता' कहा जाता था) गंभीरतापूर्वक कविता करना आरंभ किया। उस ज़माने की कविता में जहां एक ओर फ़ारसी के छंद, उपमाएं, रूपक और अलंकारों का समावेश होता था वहां, साथ ही, काफ़ी शब्द ब्रजभाषा के भी होते थे क्योंकि ब्रजभाषा ही उन दिनों फ़ारसी के बाद दरबारों में मान्य भाषा थी। हिन्दू राजाओं के दरबारों के कवि तो लगभग सभी ब्रजभाषा ही के कवि होते थे, मुसलमानों के दरबारों में भी उसकी पहुंच थी। इसीलिए जब उर्दू कविता ने होश संभाला तो उसके सामने यह दो ही साहित्य—ब्रजभाषा का और फ़ारसी का—आदर्श के रूप में थे। इसीलिए उस काल की उर्दू कविता में ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले न केवल काफ़ी शब्द बल्कि कुछ शब्दालंकार भी लेने का प्रयत्न किया गया।

किन्तु जब उर्दू कविता कुछ-कुछ अपने पैरों पर खड़ी होने लगी तो उसने अपने अंदर आवश्यक परिवर्तन करना भी शुरू किया। भाषा की शुद्धता का यह सिलसिला अभी तक जारी है, हालांकि जहां तक परिपक्वता का प्रश्न है वह मेरे विचार से 'वली' के लगभग ५० वर्ष बाद ही इतनी आगयी थी कि उर्दू का अस्तित्व अलग मालूम होने लगा था। 'हातिम' और जानजानां 'मज़हर' ने बड़ी मेहनत के साथ उर्दू के कलेवर को संवारा और कई निरर्थक अलंकारों को, जो कि उर्दू कविता के अंदर प्रौढ़ता और गंभीरता लाने में बाधक सिद्ध हो रहे थे, निकाल बाहर किया। शब्दों के चयन में भी उन्होंने बड़ा परिश्रम

किया और ब्रजभाषा के तथा अन्य देशज शब्दों में से जो उर्दू के लिए बोझिल साबित हो रहे थे उन्हें निकाल दिया।

'हातिम' ने भाषा की सफ़ाई का जो काम शुरू किया था वह तो बाद में कुछ धीमा-सा पड़ गया किन्तु 'मीर' और 'सौदा' के समय में फ़ारसी से भाषा का भंडार भरने का स्वस्थता के साथ प्रयत्न किया गया। इस ज़माने में एक ओर तो फ़ारसी के वाक्य-विन्यास को कम किया गया, दूसरी ओर फ़ारसी के मुहाविरों को हिन्दी रूप देकर उर्दू में इस तरह पचाने की कोशिश की गयी कि भावों के प्रकाशन के लिए क्षेत्र काफ़ी विस्तृत हो गया। इस ज़माने के कवियों के प्रयत्न के फलस्वरूप उर्दू कविता के बयान में इतना ज़ोर पैदा हो गया कि 'मीर' फ़ारसी के मुक़ाबले यह दावा करने लगे :—

तबईयत में फ़ारसी की जो मैंने हिन्दी शे'र कहे
सारे तुरुक बचे ज़ालिम अब पढ़ते हैं ईरान के बीच

काव्य-विषय की दृष्टि से भी इस ज़माने में इतनी तरक़्क़ी हो गयी थी कि 'मीर' और 'सौदा' अपने-अपने विषय—ग़ज़ल और क़सीदे—के इतने बड़े उस्ताद हो गये जिनका जवाब आज तक पैदा नहीं हुआ।

इसके बाद ज़माना आता है 'इंशा' और 'मसहफ़ी' का। इस ज़माने में बयान की सफ़ाई और रवानी तो बढ़ गयी और भाषा भी अधिक शुद्ध हो गयी लेकिन काव्य-विषय में काफ़ी छिछलापन आ गया। इसका कारण यही मालूम होता है कि कविता उन दिनों लखनऊ ही में केन्द्रित हो गयी थी और लखनऊ में सुख-चैन और ऐयाशी का दौर-दौरा था। कविता

नवाबी सुख-साधनों में से हो गई थी, कवियों के जीवन में न व्यक्तिगत रूप से कोई समस्या थी न उस समय के भद्र समाज का ध्यान किसी सामाजिक समस्या की ओर था। ऐसे में सिवाय चोटी-बिंदी की कविता के और क्या हो सकता था। उस ज़माने में नवीनता की जो तलाश शुरू हुई तो रेख़्ता के मुक़ाबले में रेख़्ती आ गई—यानी ज़नानी भाषा। रेख़्ती की कविताओं में स्त्रियों की चोंचलेबाज़ी की बातें ही होती थीं। तात्पर्य यह है कि साहित्यिक विकास की दृष्टि से कुछ बातों को छोड़ कर यह काल रुकाव बल्कि गिरावट का कहा जा सकता है।

इसके बाद वह ज़माना आया जिसे उर्दू के विकास का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। इस ज़माने में दिल्ली और लखनऊ दोनों में चोटी के कवि हुए जो अभी तक उर्दू-संसार में अपना डंका बजा रहे हैं। लखनऊ में 'नासिख़' और 'आतिश' और दिल्ली में 'ग़ालिब,' 'मोमिन' और 'ज़ौक़' जैसे चोटी के उस्तादों की धाक थी। फिर भी उस ज़माने में कविता का विकास दो दिशाओं में हुआ था। एक दिशा तो 'नासिख़' और 'ज़ौक़' की थी जिसमें काव्य-विषय पर नहीं बल्कि शब्दों पर अधिक ध्यान दिया जाता था; बल्कि कहीं-कहीं तो मुहावरों और शब्दजाल के चक्कर में भावों की हत्या तक कर डाली गई है। हां, छंदशास्त्र की कोई त्रुटि इन लोगों के यहां देखने में नहीं आती और मुहावरों का चमत्कार देखने योग्य है। प्रवाह भी इन लोगों की भाषा में बहुत अधिक है, किन्तु प्रभाव अपेक्षाकृत कम है।

दूसरी दिशा 'ग़ालिब', 'आतिश' और 'मोमिन' की है। इन

लोगों ने अपनी काव्य-चेतना को शब्दों की अपेक्षा भावों के साथ अधिक बाँधा। 'ग़ालिब' ने तो अक्सर भावों के प्रवाह के आगे छन्द-शास्त्र की परवा की, न परम्परागत साहित्यिक मान्यताओं की। यही नहीं, उन्होंने कभी-कभी तो इतनी नई-नई परम्पराएं डालीं कि अपने शे'रों का मतलब अपने पत्रों में समझाने को मजबूर हो गये क्योंकि लोग उन्हें 'बेमानी' कहने लगे थे। जहां तक प्रभाव का सवाल है इस शाखा के कवि बेजोड़ हैं। इसी का नतीजा है कि 'ग़ालिब', 'आतिश' और 'मोमिन' के शे'र अभी तक लोकोक्तियों के तौर पर प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि उनमें भावों की अभिव्यक्ति जितने प्रभाव-पूर्ण ढंग से की गई है उसका जोड़ पैदा होना असंभव नहीं तो कठिन ज़रूर है।

'दाग़' के सामने, जिस समय उनकी काव्य-चेतना विकसित होने लगी, यही दो रास्ते थे। उन्होंने शायद अचेतन रूप ही से दोनों परम्पराओं से लाभ उठाया और पूरा लाभ उठाया। वे 'ज़ौक़' के शागिर्द थे अतः उनकी रचना में भाषा की सफ़ाई, बंदिश की चुस्ती और मुहावरों के प्रयोग की कला अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई हैं। इस मामले में वे अपने उस्ताद 'ज़ौक़' से भी आगे बढ़ गए हैं। दूसरी ओर जहां तक प्रभाव का सम्बन्ध है उन्होंने 'ग़ालिब' और 'मोमिन' से अचेतन रूप से बहुत कुछ लिया है। चूंकि 'दाग़' सच्चे अर्थों में कवि थे इसलिए उन्होंने 'ज़ौक़' का शब्द-विन्यास और 'आतिश' की प्रभावोत्पादकता लेकर भी उसे अपने रंग में इस तरह रंग दिया कि वह अब उन्हीं की चीज़ मालूम होने लगी।

'दाग़' की तारीफ़ यह है कि उन्होंने पुराने उस्तादों का अनुकरण केवल उसी हद तक किया जहां तक वह उन्हें आगे बढ़ाने में काम आता। उसके आगे उन्होंने अपने लिए एक नया ही रास्ता बनाया। यदि वे अपनी रुचि के अनुसार काम न करते और केवल अपने उस्ताद का अंधानुकरण करते तो वे कवि के रूप में कभी सफल न हो पाते।

'दाग़' की कविता की अपनी विशेषताएं क्या हैं, इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। इस समय तो हमें केवल यह देखना है कि साहित्यिक और सामाजिक इतिहास की किन धाराओं ने 'दाग़' को प्रभावित किया और इतिहास ने उनकी क्या जगह बनायी। इस बारे में हम डा० एजाज़ हुसेन के एक लम्बे उद्धरण का अनुवाद दे रहे हैं :—

" 'दाग़' का प्रारंभिक विकास दिल्ली में हुआ। वे क़िला-ए मुअ़ल्ला में रहे जहां टकसाली ज़बान का सिक्का रायज था। सीधी-सादी ज़बान और सुलझा हुआ बयान आम-तौर से पसंद किया जाता था। उस्ताद 'ज़ौक़' के शिष्यत्व में 'दाग़' को इसी ज़बान और बयान का सामना करना पड़ा। सीधी-सादी बातों को साफ़ ज़बान में बयान कर देना उनकी घुट्टी में पड़ गया और इसी ज़बान को लेकर वे आगे बढ़े और उसको अपने अन्दाज़े-बयान की चाशनी देकर एक निज का व्यक्तित्व प्राप्त कर लिया। इस सीधी-सादी ज़बान को जन-साधारण की पसंदगी का सहारा बहुत पहले से मिल रहा था और अब पाश्चात्य शिक्षा ने इस भाषा-शैली को और सराहना शुरू किया······ 'दाग़' ने एक दूरदर्शी कलाकार की तरह भविष्य की रुचि

और अपने ज़माने के बढ़ते हुए रुहजान को दृष्टि में रखकर ज़बान को साफ़ और बयान को सुलझा रखा किन्तु उसको प्रभाव-पूर्ण बनाने के लिए कलाकारी के दूसरे अस्त्रों का प्रयोग किया।

"यह था उस ज़माने का सामाजिक और मानसिक वातावरण और साहित्यिक झुकाव जिसमें 'दाग़' का मानसिक विकास हो रहा था। साहित्य को एक ऐसे कलाकार की ज़रूरत थी जो भाषा की एक ऐसी नयी राह निकाल ले जो तत्कालीन रुचि को पूरी तरह तृप्त कर दे।

"दिक़्क़त यह थी कि ज़बान के विभिन्न रास्ते एक दूसरे के कभी-कभी इतने पास आ जाते थे कि उनका अंतर स्पष्ट न होता था। सोचने के तरीक़े में ज़रूर साफ़ फ़र्क़ था। ज़िला, जुगुत, बनावट आदि एक विचार-धारा की विशेषताएं थीं और दूसरी विचार-धारा सादगी और नैतिकता में पारंगत। जो लोग अंगरेज़ी पढ़ रहे थे उनका मानसिक झुकाव दूसरी विचार-धारा की ओर था—किन्तु वे इसमें कुछ परिवर्तन भी चाहते थे। यह वर्ग उस प्रभाव-हीनता और अतिशयोक्ति को, जो कविता में आगयी थी, दूर करके वास्तविकता की मिठास खोजता था और प्रेयसी के बाह्य रूप के वर्णन की बजाय साहित्य में प्रेमी के मन का चित्र देखना चाहता था। 'दाग़' ने चेतन अथवा अचेतन रूप से यही उचित समझा कि अपनी कविता को शाब्दिक गोरख-धंधे और अतिशयोक्ति से यथा-संभव बचा लें और सीधी-सादी भाषा में घटनाओं अथवा भावनाओं को लिपिबद्ध करदें। इस प्रकार उन्होंने उस समय की ही विचार-

धारा को नहीं अपनाया बल्कि निकट भविष्य के साहित्यकारों यानी अंग्रेज़ी ज़ानने वाले लोगों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

"लेकिन अगर इतने ही पर 'दाग़' रुक जाते तो इतने सर्वप्रिय न हो पाते जितने कि वे हुए हैं, क्योंकि यह नवीनता तो उनके पहले भी कुछ कवि ला चुके थे लेकिन कोई ख़ास नाम न पा सके थे। समय की रुचि की पूर्ण तृप्ति के लिए एक होशियार कलाकार और निर्भीक कवि की ज़रूरत थी।···संयोग से 'दाग़' में ये सारे गुण थे। काव्य-कला की शिक्षा वे उस्ताद 'ज़ौक़' से ले चुके थे। अपने बचपन में उर्दू के प्रसिद्ध और उच्च कोटि के कवियों से बहुत कुछ सीख चुके थे। जवानी में अमीरों और नवाबों के यहां वह रंगरेलियां देख चुके थे जो बहुत कम लोगों को नसीब होती हैं।······कहानियों की सच्चरित्रता और जीर्ण परम्पराओं से भयभीत होकर आत्मानुभूति को प्रकट करने में वे झिझके नहीं। तत्कालीन घटनाओं और सौन्दर्य तथा प्रेम के वास्तविक और क्रियात्मक पहलुओं को अपने शे'रों में साफ़-साफ़ बेधड़क लाना शुरू किया।

"उस वक़्त के लोग चाहते भी यही थे कि कोई दिल का चोर निकाल दे और जो कुछ रसपूर्ण वातावरण में होता है उसकी परम्परागत सामाजिक मान्यताओं के भय से उपेक्षा न कर दे बल्कि रोज़ की बातों को काव्य-कला के साथ पेश कर दे; वास्तविकताओं को कुरुचिपूर्ण समझ कर छोड़े नहीं बल्कि उन्हें ख़ूबसूरती के साथ ग़ज़ल बनादे। 'दाग़' ने इस मनो-

वैज्ञानिक पहलू को समझा और अपनी ग़ज़लें इस अंदाज़ से कहने लगे कि जिससे लोगों की भावनाओं की सच्ची अभिव्यक्ति हो। इस नये कार्य में उन्होंने अंदाज़े-बयान—वर्णन-शैली—पर खास तवज्जह की। तेवर, तीखापन और सबसे ज़्यादा शोखी को अपनी ग़ज़लों का जौहर बनाया और इन विशेषताओं पर इतना ज़ोर दिया कि उर्दू काव्य में अनुपम समझे गये।" ('निगार', दाग़ विशेषांक, जनवरी-फ़र्वरी, १९५३; पृष्ठ १९-२०)

'ज़ौक़' के शागिर्द होने के लिहाज़ से 'दाग़' के लिए यह तो स्वाभाविक ही है कि वह ज़बान और बयान में 'ज़ौक़' की सी चुस्ती लायें, बल्कि अगर ग़ौर से देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने उस्ताद की भाषा को और भी परिमार्जित करके सामने रखा। बहुत-सी कमज़ोरियां जो उनके उस्ताद में रह गयी थीं उन्होंने दूर कर दीं।

लेकिन उन्होंने 'ज़ौक़' के अलावा 'मोमिन' और 'ग़ालिब' से भी असर लिया है। यह बात भी स्वाभाविक ही थी। पहली बात तो यह थी कि उन्होंने प्रेम की जो भावनाएं व्यक्त की हैं वे 'ज़ौक़' की भांति कल्पना-जन्य नहीं हैं बल्कि 'ग़ालिब' और 'मोमिन' की भांति वास्तविकता-जन्य हैं। इसलिए अलग-अलग रास्ते होते हुए भी भावों का यह साम्य कभी-कभी इतना खुलकर सामने आ जाता है कि कुछ शे'र पूरे तौर पर 'मोमिन' और कुछ 'ग़ालिब' के रंग में रंगे दिखायी देते हैं और यदि बताया न जाय कि ये 'दाग़' की रचनाएं हैं तो देखने वाले शायद उन्हें 'ग़ालिब' और 'मोमिन' ही की समझें।

दाग़ के काव्य की विशेषताएं

'फ़िराक़' गोरखपुरी लिखते हैं :—

"उर्दू को कामयाब शायरी में जो आज हमें सुलझाव नज़र आता है वह बहुत कुछ 'दाग़' का रहीने-मिन्नत है। 'दाग़' ने मुस्तक़िल असर उर्दू ज़बान पर छोड़ा है। इस बारे में शायरी की ज़बान पर 'दाग़' का वही अहसान है जो अंगरेज़ी ज़बान पर, खासकर अंगरेज़ी नस्र (गद्य) पर ड्राइडेन के कारनामों का रहा है।" ('निगार', दाग़ विशेषांक, पृष्ठ १००)

उर्दू-काव्य की भाषा के संवारने-सजाने में 'दाग़' का स्थान सर्वोच्च है—इस बारे में दो रायें नहीं हो सकतीं। यद्यपि आज हम राजनीतिक और सामाजिक कारणों से उर्दू-भाषा में नित-नये परिवर्तन करना बिल्कुल उचित समझते हैं तथापि उपर्युक्त कथन में कोई संदेह नहीं हो सकता। उन्होंने उर्दू को अन्य प्रभावों से मुक्त करके उसके अंदर इतनी पूर्णता पैदा कर दी कि उर्दू कविता की भाषा न केवल प्रेम-सम्बन्धी विषयों ही की अपितु हर प्रकार की मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के योग्य हो गयी। बीसवीं शताब्दी में उर्दू-साहित्य के लहलहाते पौधे में अंगरेज़ी के उद्यान की जो क़लम लगी है उसका श्रेय बहुत कुछ 'दाग़' की बाग़बानी को है। उन्होंने भाषा में जो लोच और प्रभाव पैदा कर दिया उसी के आधार पर नयी-नयी अभिव्यक्तियां सफलता के साथ उर्दू-काव्य में की जाने लगीं। 'दाग़' की पैदा की हुई भाषा की ज़मीन न मिलती तो हमें इसमें बहुत संदेह है कि 'अकबर'

का व्यंग और चोटें, 'चकबस्त' की देशभक्ति, 'इक़बाल' की उड़ान और आधुनिक प्रगतिशील कवियों की रणहुंकार देखने और सुनने को मिलती या नहीं। कम से कम इतना तो स्पष्ट है कि ये लोग अपनी प्रकृति-प्रदत्त प्रतिभा और मानसिक झुकाव के कारण कहते तो वही जो कि उन्होंने कहा है किन्तु उनकी रचनाओं में वह ज़ोर और प्रभाव न पैदा हो पाता जो इस समय है।

सरलता—'दाग़' की ग़ज़लों पर नज़र डालने पर हमें सबसे पहले जो चीज़ दिखाई देती है वह उनकी सरलता है। कहीं से उठाकर उनकी रचनाएं देख लीजिए, न कहीं उलझा हुआ वाक्य-विन्यास है, न भारी-भरकम अरबी-फ़ारसी के शब्द, न विषय गहन जिसकी व्याख्या करते-करते व्याख्याकार सर-फुटौवल करने लगें। उन्होंने देशज शब्दों से यथासंभव पीछा छुड़ाने का प्रयत्न किया है, किन्तु इतना नहीं कि कविता के प्रवाह में बाधा पड़ जाय। भाषा में सरलता वे सरलता लाने के लिए नहीं लाये बल्कि उन्होंने यह देख लिया था कि सरल विषयों को सरल शब्दों में रखने से ही प्रभाव पैदा होता है। वे जानते थे कि उर्दू बोलने वालों के सिर पर साहित्य के नाम पर अरबी-फ़ारसी लादना उनपर एक प्रकार का मानसिक अत्याचार है। यही नहीं बल्कि जो भाव हमारे मन में उठते हैं उन्हें सबसे अधिक सरलता से उन्हीं शब्दों और वाक्य-विन्यास के साथ रखा जा सकता है जो हमारी रोज़ की भाषा के हों। दूसरे शब्दों में उर्दू-कविता फ़ारसी की चेरी बनकर

नहीं बल्कि उर्दू ही बनकर प्रभावोत्पादक हो सकती है। वे कहते हैं :—

कहते हैं उसे ज़बाने-उर्दू—जिसमें न हो रंग फ़ारसी का

'दाग़' की रचनाओं को कहीं से देख लीजिये (किसी विशेष चयन की आवश्यकता नहीं है) ऐसी सीधी-सादी भाषा में दिल की बातें कह जाते हैं जो दूसरे लोग हज़ार चक्कर डालकर भी न कह सकें। उदाहरण के लिए देखिए :—

दिलबर से जुदा होना या दिल को जुदा करना
इस फ़िक्र में बैठा हूँ आख़िर मुझे क्या करना

◇ ◇ ◇

लौ लगाये ख़ुदा से बैठे थे
आ गया बीच में ख़याल तेरा

◇ ◇ ◇

इश्क़ की राह है बहुत दुश्वार
चलते-चलते बिचल गये लाखों

◇ ◇ ◇

वास्तविकता यह है कि असली उर्दू वही है जो 'दाग़' की भाषा है। उन्हें अपनी भाषा का बड़ा गर्व था और उचित गर्व था क्योंकि भाषा की जैसी जानकारी उन्हें थी किसी और को नहीं थी :—

उर्दू है जिसका नाम हमीं जानते हैं 'दाग़'
हिन्दोस्तां में धूम हमारी ज़बां की है

◇ ◇ ◇

भाषा का टकसालीपन और शब्दों का उचित प्रयोग बड़ा ही कठिन काम है। 'दाग़' की सारी उम्र भाषा को मांझने और शब्दों और मुहावरों का उचित प्रयोग निर्धारित करने में लग गई। उनका मशहूर शे'र है :

नहीं खेल ऐ 'दाग़' यारों से कह दो
कि आती है उर्दू ज़बां आते-आते

मुहावरों का प्रयोग—मुहावरों के प्रयोग पर उर्दू के सारे कवियों ने बहुत ध्यान दिया है। शुरू ही से इस बारे में कवियों के बीच बड़ी-बड़ी बहसें चलती थीं कि किसी शे'र में मुहावरे का प्रयोग उचित है अथवा अनुचित, लेकिन 'दाग़' की इस बारे में जो देन है उसे उर्दू-संसार कभी भुला न सकेगा। उन्होंने अपनी ग़ज़लों और अपने लगभग दो हज़ार शिष्यों की ग़ज़लों की इस्लाहों द्वारा भाषा और मुहावरों के प्रयोग का जो मानदंड स्थापित किया है वह आज सर्वमान्य हो गया है। यहाँ तक कि उर्दू में 'दाग़' के बहुत से मिसरे ही मुहावरों के तौर पर प्रयुक्त होने लगे हैं।

मुहावरों के प्रयोग के अतिरिक्त 'दाग़' की एक बहुत बड़ी विशेषता उनके बयान की सफ़ाई और प्रवाह है। सफ़ाई का अर्थ यह है कि शब्दों का चुनाव और शे'र में उन्हें उचित स्थान रखने का काम इस सलीक़े से किया जाय कि मतलब फ़ौरन समझ में आ जाय और कहीं मानसिक उलझाव इतना न हो जाय कि शे'र का मतलब फ़ौरन समझ में न आये। उर्दू भाषा में यह विशेषता बहुत से कवियों में, बल्कि अधिकतर

कवियों में रही है, किन्तु हमारी समझ में 'दाग़' उन सब से बाज़ी मार ले गये हैं। बयान की सफ़ाई और प्रवाह से उसकी प्रभावोत्पादकता बहुत बढ़ जाती है। इसी विशेषता को ओज कहा जाता है, यानी यह गुण कि इधर शे'र कहने वाले की ज़बान से निकला या पढ़ने वाले की आंखों तले गुज़रा, उधर उसका सीधा असर दिल पर हुआ। 'दाग़' के संकलन में पाठकों को सभी जगह ऐसे ही शे'र मिलेंगे। संकलन ही क्या 'दाग़' की पूरी रचनाओं में उलझे हुए शे'र कहीं न मिलेंगे।

तेवर और शोख़ी—उर्दू कविता में तेवर विशेष महत्व रखता है। इस बारे में 'ग़ालिब' के तेवरों का मुक़ाबला शायद कोई न कर सके लेकिन 'दाग़' भी इस मैदान में पीछे नहीं हैं। तेवर का मतलब है शब्दों को इस प्रकार रखना कि उनका मतलब अच्छी तरह तभी समझ में आये और उनका सौन्दर्य तभी स्पष्ट हो जबकि उन्हें एक ख़ास लहजे से तथा एक विशेष ढंग से अंग-संचालन करके पढ़ा जाय। उदाहरण के तौर पर यह शे'र देखिये :—

गुज़ारी मैंने सारी रात यह कहकर वो अब आये !
ज़रा ऐ चश्मे-तर थमना ! ज़रा ऐ दिल जिगर रहना !

इस शे'र में 'वो अब आये' और दूसरे मिसरे में दोनों जगह 'ज़रा' को झटके के साथ आवाज़ को दबाकर पढ़िए तभी शे'र का लुत्फ़ मिलेगा। शे'र में कोई ख़ास बात नहीं है लेकिन तेवर ने इसमें बेपनाह जान डाल दी है। एक और शे'र लीजिए :

हुआ है चार सिजदों पर ये दावा ज़ाहिदो तुमको
ख़ुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है

दूसरे मिसरे में दंभी कर्मकांडियों के लिए जो निर्भीकता-पूर्ण चुनौती है उसका ज़ोर तभी देखने को मिलेगा जबकि 'बेच' को काफ़ी झटके और ज़ोर के साथ कुछ आँखें तरेरते हुए पढ़ा जाय।

जहां तक शोख़ी का सवाल है इस बारे में 'दाग़' से टक्कर लेने वाला अगर कोई कवि हो सकता है तो वह 'जुर्रत' है। लेकिन 'जुर्रत' की शोख़ी इस स्तर पर चली जाती है कि उसे सुरुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए किसी भी स्थिति में पढ़ना बड़ा मुश्किल हो जाता है। इसके मुक़ाबले में 'दाग़' की शोख़ी ऐसी है जो आज भी हम अपने मन की विशेष स्थिति में पसंद कर सकते ही नहीं पसंद कर रहे हैं। ख़ास तौर से दाग़ के एक शे'र को (कम से कम पहले मिसरे को) लगभग सभी हिन्दी जानने वालों ने सुना बल्कि प्रयोग किया होगा। इस शे'र की सर्वप्रियता का एक-मात्र कारण उसकी शोख़ी का तेवर है। शे'र यह है :—

हज़रते-'दाग़' जहां बैठ गये बैठ गये
और होंगे तेरी महफ़िल से उभरने वाले

◇ ◇ ◇

'दाग़' के कुछ और शे'रों की शोख़ी भी देखने योग्य है :—

लुत्फ़े-मै तुझसे क्या कहूं ज़ाहिद
हाय कमबख़्त तूने पी ही नहीं

◇ ◇ ◇

आपके सर की क़सम 'दाग़' को परवा भी नहीं
आपसे मिलने का होगा जिसे अरमां होगा

◇ ◇ ◇

प्रभावोत्पादकता—'दाग़' की भाषा और वर्णन-शैली की विशेषताओं का हम ऊपर विवेचन कर चुके हैं। अब उनकी प्रभावोत्पादकता को लीजिए। पहले तो यह समझ लेने की ज़रूरत है कि कवि अपनी कल्पना और अभ्यास के द्वारा शब्दों का उचित प्रयोग करके वाग्चातुर्य का चाहे जितना अच्छा उदाहरण दे दे लेकिन उसमें असर नाम को नहीं होता बल्कि ज़बर्दस्ती की अतिशयोक्ति, जो दिल से नहीं बल्कि दिमाग़ से उपजी हो, रुलाने की बजाय हंसा देती है।

'दाग़' ने पहले तो अतिशयोक्ति से काम ही नहीं लिया, किन्तु अगर कभी अतिशयोक्ति का प्रयोग किया भी तो ऐसी स्थिति में जहां कि अतिशयोक्ति आम लोगों की ज़बान पर चढ़कर मुहावरे का रूप ले चुकी हो। इसलिए उनका वर्णन कभी वास्तविकता की सीमा को पार न करता था। दूसरी बात यह है कि उन्हें जिस प्रेम का अनुभव था वह आमने-सामने का, खुल-खेलने वाला प्रेम था। 'मीर' और 'मोमिन' की भांति उन्हें कभी ऐसी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ा जबकि प्रेयसी के मिलन की कोई आशा ही न हो और विरह की पीड़ा मीठा-मीठा दर्द देती हो या नासूर बनकर टपकती हो। इसीलिए उनकी अधिकतर कविता मामलाबंदी (प्रेम-व्यापार की किसी

वास्तविक घटना का पूर्ण चित्रण) की है। इसमें उनसे अधिक सफल शायद ही कोई और हुआ हो। साथ ही उत्कृष्ट प्रेम की भावनाएं भी जब उनके हृदय में उठती थीं तो वे उन्हें इतनी सफलतापूर्वक और प्रभावपूर्ण ढंग से शे'र का जामा पहना देते थे जिसकी मिसाल ढूंढनी मुश्किल है। उनके कुछ शे'र देखिए :—

भवें तनती हैं, ख़ंजर हाथ में है, तनके बैठे हैं
किसी से आज बिगड़ी है जो वो यूं बनके बैठे हैं

◇ ◇ ◇

चाह का नाम जब आता है बिगड़ जाते हो
वह तरीक़ा तो बता दो तुम्हें चाहें क्योंकर

◇ ◇ ◇

होशो-हवास ताबो-तवां 'दाग़' जा चुके
अब हम भी जाने वाले हैं सामान तो गया

◇ ◇ ◇

लेना संभालना कि मेरे होश उड़ चले
आता है कोई मस्त क़यामत की शान से

◇ ◇ ◇

'दाग़' की रचनाएं

'दाग़' के चार दीवान और एक मसनवी हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है :—

(१) **गुलज़ारे-दाग़**—यह सबसे पहला दीवान है। इसमें लाल क़िले के मुशायरों की ग़ज़लें और रामपुर में अपने समकालीनों के साथ मुशायरों में पढ़ी गयी ग़ज़लें और कुछ दूसरी कविताएं हैं। इसमें ३८६ ग़ज़लें (४,६४३ शे'र), ७ रुबाइयां, ६ मुख़म्मस (पांच-पांच मिसरों के कुल ७५ बंद), एक मुसद्दस दिल्ली की तबाही पर (२३ बंद या १३८ मिसरे), दो क़सीदे (१२० शे'र) और दो तारीख़ी क़िते (२० शे'र) हैं। इसके शे'रों की कुल तादाद ५,२७८ है। इस दीवान की विशेषता यह है कि चूँकि यह जवानी की रचना है इसलिए इसके शे'रों में प्रभावोत्पादकता ग़ज़ब की है। यह दीवान सबसे पहले १८७८ ई० में प्रकाशित हुआ था।

(२) **आफ़ताबे-दाग़**—यह दीवान सबसे छोटा है। इसमें कुल १२६ ग़ज़लें (१७५२ शे'र) और ८ रुबाइयां हैं। इस प्रकार इसमें कुल १७६८ शे'र हैं। यह सबसे पहले १८८४ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह भी जवानी के समय की रचना है और इसमें भी वही विशेषताएं हैं जो 'गुलज़ारे-दाग़' में हैं, यानी भावों की तीव्रता, मामला-बंदी और शोख़ी।

(३) **महताबे-दाग़**—यह दीवान हैदराबाद में १८६२ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें २६२ ग़ज़लें (४,१७६ शे'र), १६ रुबाइयां, २ मुख़म्मस (१७ बंद), ६ क़सीदे (५१० शे'र), ७३ तारीख़ी क़िते (३३० शे'र), ४ ग़ैर-तारीख़ी क़िते (४६ शे'र), ४ सेहरे (४० शे'र), दो सलाम (३३ शे'र) और १२० विविध शे'र हैं। इस प्रकार इसमें कुल ५,३१८ शे'र हैं। यह उस

समय की रचना है जब 'दाग़' जवानी से निकल कर प्रौढ़ावस्था में आ गये थे। फलतः इसके शे'रों में पहले दो दीवानों के शे'रों की तरह की चोटें तो नहीं मिलतीं लेकिन भाषा की चुस्ती, सफ़ाई और प्रवाह बढ़ गया है। इसलिए इसके शे'र भी दिल में उतरते चले जाते हैं।

(४) **यादगारे-दाग़**—यह उनका आख़िरी दीवान है जो उनके प्रिय शिष्य प्रो० 'अहसन' मारहरवी ने उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी अप्रकाशित रचनाओं को इकट्ठा करके प्रकाशित कराया था। बाद में कुछ और ग़ज़लें रह गयीं जिन्हें 'यादगारे-दाग़' के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित किया गया है। 'यादगारे-दाग़' में १५६ ग़ज़लें (१७७२ शे'र), ८ रुबाइयां, २ क़सीदे (१९६ शे'र), ३४ तारीख़ी क़िते (१२९ शे'र) ३ ग़ैर-तारीख़ी क़िते (५६ शे'र), २ सेहरे (३३ शे'र), एक सलाम (२१ शे'र) और १,०८८ विविध शे'र हैं। इस प्रकार इस दीवान में कुल २,६११ शे'र हैं।

चारों दीवानों के शे'रों की गणना (जो नूरुल्ला 'नूरी' की गणना पर आधारित है) अपनी जगह सही होते हुए भी उनके कुल शे'रों की गणना में गड़बड़ हो सकती है, क्योंकि एक तो 'यादगारे-दाग़' का बाद में एक परिशिष्ट निकला है (जो लेखक को नहीं मिला) और दूसरी बात यह है कि शायद शागिर्दों की ग़लती से 'आफ़ताबे-दाग़' की बहुत-सी ग़ज़लें 'महताबे-दाग़' में शामिल हो गयी हैं। इसी कारण इसमें ग़ज़लों की संख्या बहुत अधिक भी हो गयी है।

(५) **मसनवी फ़रियादे-दाग़**—इसका प्रथम प्रकाशन १८८४ ई० में हुआ। इसमें मुन्नीबाई 'हिजाब' से, जो नवाब क़ल्बे अली खां द्वारा जारी किए हुए 'बेनज़ीर के मेले' में रामपुर आयी थी, 'दाग़' के प्रेम का वर्णन है। यह बड़े साइज़ के ५२ पृष्ठों की पुस्तक है और इसमें १०० से कुछ अधिक शे'र हैं। प्लाट और क़िस्से के लिहाज़ से इसमें 'गुल्ज़ारे-नसीम' या 'सहरुल-बयान' (उर्दू की दो सर्वश्रेष्ठ मसनवियां) जैसा आकर्षण बिल्कुल नहीं है किन्तु इसमें कवित्व बहुत अधिक है और प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं के वर्णन में तो यह बेजोड़ है।

चयन



गुलज़ारे-दाग़ से संकलन

ग़ज़लें

सब्र ले ज़ाहिदे-नाफ़हम[1] न मैख्वारों का
बख्शने वाला भी देखा है गुनहगारों का
डर गये नामे-शिफ़ा[2] सुनके जहे ख्वाहिशे-मर्ग[3]
मुंह ज़रा-सा निकल आया तेरे बीमारों का
अश्के-खूं आंख से चलते हुए इतने टपके
कि जहां मैं हूं वहां फ़र्श है अंगारों का

◇ ◇ ◇

गर मेरे बुते-होशरुबा को नहीं देखा
उस देखने वाले ने खुदा को नहीं देखा
जिस शक्ल से हंसते हैं मेरे हाल पे अहबाब
रोते हुए यूं अहले-अज़ा[4] को नहीं देखा
ऐसी नज़रे-शोख़ में तमकीं[5] नहीं देखी
इस तरह तग़ाफ़ुल में हया को नहीं देखा

१. मूर्ख कर्मकांडी २. इलाज का नाम ३. मृत्यु के इच्छुक
४. मातम करने वाले ५. शान

हमारी आंखों ने भी तमाशा अजब अजब इन्तख़ाब देखा
बुराई देखी भलाई देखी अज़ाब देखा सवाब देखा
न दिल ही ठहरा न आंख झपकी न चैन पाया न ख़्वाब देखा
ख़ुदा दिखाये न दुश्मनों को जो दोस्ती में अज़ाब देखा
पड़े हुए थे हज़ारों परदे कलीम[1] देखो तो जब भी ग़श थे
हम उसकी आंखों के सदक़े जिसने वो जल्वा यूं बेहिजाब देखा
जो राह में तेरी आके बैठे वो फ़िक्रे-दैरो-हरम से छूटे
कि तेरे कूचे के साकिनों ने बहिश्त में भी अज़ाब देखा
शराबे-ग़फ़लत से 'दाग़' ग़श थे दिखाये ग़फ़लत ने क्या तमाशे
कि सोते-सोते जो चौंक उट्ठे मगर[2] कोई तुमने ख़्वाब देखा

◇ ◇ ◇

आख़िर को कुफ़्र इश्क़ से ईमान हो गया
मैं बुत-परस्तियों से मुसलमान हो गया
क़ातिल न हाथ रोक कि रुकती है मेरी जान
ख़ंजर तो और दम का निगहबान हो गया
मै तो हलाल है जो पिये ढब से बादानोश
मैं तौबा करके और पशेमान हो गया

◇ ◇ ◇

दिल लेके उसकी बज़्म में जाया न जायगा
यह मुद्दई[3] बग़ल में छिपाया न जायगा
दिल क्या मिलाओगे कि हमें हो गया यक़ीं
तुमसे तो ख़ाक में भी मिलाया न जायगा

१ हज़रत मूसा २. शायद ३. शत्रु

दुश्मन के आगे सर न झुकेगा किसी तरह
यह आसमां ज़मीं से मिलाया न जायगा
ज़ुल्फ़ें नहीं कि शाने[1] से आरास्ता[2] किया
बिगड़ा हुआ मिज़ाज बनाया न जायगा
ऐ 'दाग़' तुझको रिज़्क़[3] की ख़्वाहिश है चर्ख़ से
इतना ये ग़म खिलायेगा खाया न जायगा

◇ ◇ ◇

की तर्क मै तो मायले-पिंदार[4] हो गया
मैं तौबा करके और गुनहगार हो गया
उसकी तरफ़ से दिल न फिरेगा कि नासहो
अब हो गया ये जिसका तरफ़दार हो गया
किस-किस की चाह कीजिए किस-किस की आरज़ू
इक दिल हज़ार ग़म में गिरफ़्तार हो गया
इक हर्फ़े-आरज़ू पे वो मुझसे ख़फ़ा हुए
इतनी-सी बात कहके गुनहगार हो गया
ऐ 'दाग़' क्या बतायें मुहब्बत में क्या हुआ
बैठे-बिठाये जान को आज़ार हो गया

◇ ◇ ◇

जो सर में ज़ुल्फ़ का सौदा था सब निकाल दिया
बला हूं मैं भी कि आई बला को टाल दिया
ख़ुदा करीम है यूं तो मगर है इतना रश्क
कि मेरे इश्क़ से पहले तुझे जमाल दिया

१. कंघा २. सुसज्जित ३. रोज़ी ४. बुद्धिवादी

तुम्हीं कहो कि कहां थी ये वज़अ़ यह तरकीब
हमारे इश्क़ ने सांचे में तुमको ढाल दिया
बतायें लफ़्ज़े-तमन्ना के तुमको मानी क्या
तुम्हारे कान में इक हर्फ़ हमने डाल दिया
हमें खुदा ने बहुत रंजो-ग़म दिया ऐ 'दाग़'
बुतों के दिल में न थोड़ा-सा रहम डाल दिया

◇ ◇ ◇

जो हो सकता है इससे वह किसी से हो नहीं सकता
मगर देखो तो फिर कुछ आदमी से हो नहीं सकता
अलग करना रक़ीबों का इलाही तुझको आसां है
मुझे मुश्किल कि मेरी बंदगी से हो नहीं सकता
किया है वादाए-फ़र्दा उन्होंने देखिये क्या हो
यहां सब्रो-तहम्मुल आज ही से हो नहीं सकता
नहीं गर तुझ पे क़ाबू दिल ही पर कुछ ज़ोर हो अपना
करूं क्या यह भी तो नाताक़ती से हो नहीं सकता
न रोना है तरीक़े का न हँसना है सलीक़े का
परेशानी में कोई काम जी से हो नहीं सकता

◇ ◇ ◇

ग़म को मैं इश्क़ में गमख्वारे-दिलो-जां समझा
रंज को राहत और आज़ार को दरमां समझा
कुछ तो थी बात कि नासह की न मानी कुछ बात
कुछ तो समझा जो न कुछ यह दिले-नादां समझा
सहल होना मेरी मुश्किल का बहुत मुश्किल है
काम दुश्वार वो निकला जिसे आसां समझा

जानकर चाक किये मैंने वो दीवाना हूं
जेब को जेब गिरेबां को गिरेबां समझा
नहीं जाने का यहां से कहीं हरगिज़ ये 'दाग़'
कूचाए-यार को मैं रौज़ाए-रिज़्वां[1] समझा

◇ ◇ ◇

जाल जुल्फ़े-सियाह ने मारा, तीर काफ़िर निगाह ने मारा
खा गया मग़ज़ नासहे-नादां, मुझको इस ख़ैरख़्वाह ने मारा
ज़ब्त कर दर्दे-इश्क़ को ऐ दिल, इस तेरी आह आह ने मारा
ज़ेरे-ख़ंजर भी ज़ब्ते-इश्क़ रहा, दम न इस बेगुनाह ने मारा
फिर गया रोज़े-हश्र दिल मुझसे, मुझको मिलकर गवाह ने मारा
मर गये हम तो वज़अ़दारी[2] में, दोस्ती की निबाह ने मारा
चर्ख़ से उम्रे-ख़िज़र मांगी थी, जान से कीनाख़्वाह[3] ने मारा
देख ऐ 'दाग़' अहले-दुनिया को, हविसे-इज़्ज़ो-जाह[4] ने मारा

◇ ◇ ◇

हसरतें माशूक़ की, ग़म आसमाने - पीर का
ले गया दुनिया से मैं जो था मेरी तक़दीर का
उनकी ख़ामोशी में तो आलम है इक तसवीर का
और जब की बात लच्छा बंध गया तक़रीर का
देख तो क़ातिल कि जोशे-गिरिया-ए-बिस्मिल[5] ने क्या
एक कर डाला लहू पानी तेरी शमशीर का

---

१. स्वर्ग २. बात निबाहना ३. दुश्मन ४. सम्मान की इच्छा
५. घायल के रोने का ज़ोर

है तो यूं ज़िदां[1], पे मेहमां का तवाज़ो खत्म है
हल्क़ा-हल्क़ा पांव पड़ता है मेरी ज़ंजीर का
इश्क़ उस रअ़ना[2] जवां का 'दाग़' करता है सितम
नाम है बदनाम नाहक़ आसमाने - पीर का

◇ ◇ ◇

ग़ज़ब किया तेरे वादे पे एतबार किया
तमाम रात क़यामत का इंतज़ार किया
ये किसने जल्वा हमारे सरे-मज़ार किया
कि दल से शोर उठा हाय बेक़रार किया
ये दिल को ताब कहाँ है कि हो मआल-अंदेश[3]
उन्होंने वादा किया इसने एतबार किया
तड़प फिर ऐ दिले-नादां ! कि ग़ैर कहते हैं
अख़ीर कुछ न बनी सब्र अख़्तियार किया
भुला-भुला के जताया है उनको राज़े-निहां
छिपा-छिपा के मुहब्बत को आशकार[4] किया
न पूछ दिल की हक़ीक़त मगर ये कहते हैं
वो बेक़रार रहे जिसने बेक़रार किया
कुछ आगे दावरे-महशर[5] से है उमीद मुझे
कुछ आपने मेरे कहने का एतबार किया

◇ ◇ ◇

दिल संभाला पर न संभला पांव उट्ठा सर गिरा
उनके आगे आज मैं अक्सर उठा अक्सर गिरा

१. क़ैदखाना २. बांका ३. परिणाम को सोचने वाला ४. प्रकट
५. भगवान

था बुरा मौक़ा मगर अच्छा रहा पासे-अदब
आज कटकर पांव पर क़ातिल के मेरा सर गिरा
दिल सा दाना इश्क़ में जो ख़िज़्र को रस्ता बताय
दीदा-ओ-दानिस्ता[1] तेरी चाह में क्योंकर गिरा
निकली बिस्मिल्लाह उस काफ़िर के मुँह से बेधड़क
आज इस अंदाज़ से यह आशिक़े-मुज़तर गिरा
पहले क्यों ऐ 'दाग़' इतनी पी गये फ़रमाइए
सर पकड़कर अब जो है फ़रियाद मेरा सर गिरा

◇ ◇ ◇

डूब कर सीने में इस रंग से पैकां[२] निकला
दिल से बेसाख़्ता निकला कि वो अरमां निकला

◇ ◇ ◇

जल्वा उसका नज़र नहीं आता, नहीं आता नज़र नहीं आता
आँख खुलते ही ख़्वाबे-ग़फ़लत से, हाय क्या क्या नज़र नहीं आता
हम तो कहने को हाले-दिल कहदें, सुनने वाला नज़र नहीं आता
तूने जिस दिन से की मसीहाई, कोई अच्छा नज़र नहीं आता
दिल का आईना देखने को बना, पर जो चाहा नज़र नहीं आता
हमीं ऐ 'दाग़' कोर-बातिन[3] हैं, वर्ना वह क्या नज़र नहीं आता

◇ ◇ ◇

किन बेकसों का पर्दा ये चर्खे-कुहन[४] हुआ
जीतों का पैरहन[५] न मरों का कफ़न हुआ
ईमान कुछ वज़ू तो नहीं है कि टूट जाय
ऐ शेख़ क्या हुआ जो मैं तौबा-शिकन हुआ

१. जानते-बूझते २. तीर ३. दिल के अंधे ४. बूढ़ा आसमान
५. वस्त्र

तीर उसका चलते-चलते जब परेशां हो गया
थक के बैठा मेरे दिल में और पिनहां हो गया
दिल में ले-देकर रहा था एक क़तरा ख़ून का
कुछ निसारे-ग़म हुआ कुछ सर्फ़-मिज़गां[1] हो गया

◇ ◇ ◇

क्योंकर उसकी निगहे-नाज़ से जीना होगा
ज़हर दे, उसपे ये ताकीद कि पीना होगा

◇ ◇ ◇

बशर ने ख़ाक पाया लाल पाया या गुहर[2] पाया
मिज़ाज अच्छा अगर पाया तो सब कुछ उसने भर पाया
नफ़स[3] के आने-जाने पर बशर की ज़िंदगी ठहरी
ये पूछो तो मुसाफ़िर तूने क्या लुत्फ़े-सफ़र पाया
जराहत[4] का मज़ा है, चारागर! नासूर हो जाये
बँधा जिस ज़ख़्म का अंगूर उसने क्या समर[5] पाया
न खाया था कभी ख़ूने-जिगर हमने मगर खाया
न पाया था अभी आज़ार, उल्फ़त में मगर पाया
तुम्हारी रहगुज़र में लोग दीवाना बनाते हैं
कहा मुझसे तेरा दिल है किसी ने कुछ अगर पाया
रईसे - मुस्तफ़ा - आबाद[6] के नौकर हुए जब से
कहें क्या 'दाग़' हम आराम हमने किस क़दर पाया

◇ ◇

१. पलकों की भेंट २. मोती ३. सांस ४. चोट ५. फल
६. नवाब रामपुर

"अजब अपना हाल होता जो विसाले-यार होता
कभी जान सदक़े होती कभी दिल निसार होता
जो तुम्हारी तरह तुमसे कोई झूठे वादे करता
तुम्हीं मुंसिफ़ी से कह दो, तुम्हें एतबार होता ?
ये मज़ा था दिल-लगी का कि बराबर आग लगती
न तुझे क़रार होता न मुझे क़रार होता
तेरे वादे पर सितमगर अभी और सब्र करते
अगर अपनी ज़िंदगी का हमें एतबार होता
ये वो दर्दे-दिल नहीं है कि हो चारासाज़ कोई
अगर एक बार मिटता तो हज़ार बार होता

◇ ◇ ◇

ख़ातिर से या लिहाज़ से मैं मान तो गया
झूठी क़सम से आपका ईमान तो गया
डरता हूं देखकर दिले-पुर-आरज़ू को मैं
सुनसान घर ये क्यों न हो मेहमान तो गया
देखा है बुतकदे[1] में जो ऐ शेख़ कुछ न पूछ
ईमान की तो यह है कि ईमान तो गया
अफ़शाए-राज़े-इश्क़[2] में गो ज़िल्लतें हुईं
लेकिन उसे जता तो दिया, जान तो गया
होशो-हवासो-ताबो-तवाँ 'दाग़' जा चुके
अब हम भी जाने वाले हैं सामान तो गया

◇ ◇ ◇

१. मंदिर २. प्रेम का प्रकट करना

मेरे क़ाबू में न पहरों दिले-नाशाद आया
वह मेरा भूलने वाला जो मुझे याद आया
दी मुअज़्ज़न ने शबे-वस्ल अज़ां पिछले पहर
हाय कमबख़्त को किस वक्त ख़ुदा याद आया
मैं तमन्ना-ए-शहादत[1] का मज़ा भूल गया
आज इस शौक़ से अरमान से जल्लाद आया

◇ ◇ ◇

मैं क्या करूं बला से जो तू मेहरबां है अब
वह दिल कहां है अब वो तबीयत कहां है अब
बे-मेहर-ओ-बेवफ़ा-ओ-दिलाज़ारो-दिलसतां[2]
जी ढूंढता है जिसको वो पैदा कहां है अब
ज़ालिम कहीं ख़ुदा न करे तू सुने उसे
जो कुछ शबे-फ़िराक़ में विर्दे-ज़बां[3] है अब
क्या-क्या मिलाये ख़ाक में इन्सान चांद से
सच पूछिए अगर तो ज़मीं आसमां है अब

◇ ◇ ◇

कम नहीं सामान में हंगामा-ए-महशर[4] से आप
दीजिए दिल को दुआएं बन गये इस घर से आप
अपने सीने से दबा दीजे ज़रा सीना मेरा
चूर कीजे शीशाए-दिल को इसी पत्थर से आप
हज़रते-ज़ाहिद हर इक नश्शे को आदत शर्त है
मर न जायेंगे शराबे-चश्माए-कौसर[5] से आप ?

१. शहीद होने की कामना २. निष्ठुर और मन-मोहक ३. ज़बान पर ४. प्रलय ५. स्वर्ग की मदिरा का चश्मा

जब हमें मरना ही ठहरा हाजते - क़ातिल नहीं
काट लेंगे हम गला अपना किसी ख़ंजर से आप

◇ ◇ ◇

है तुर्फ़ा तमाशा सरे-बाज़ारे-मुहब्बत
सर बेचते फिरते हैं ख़रीदारे-मुहब्बत
इक हश्र बपा था दमे-इज़हारे-मुहब्बत[1]
रफ़तारे-क़यामत[2] हुई गुफ़्तारे-मुहब्बत
कुछ तज़किराए-इश्क़[3] रहे हज़रते-नासेह
कानों को मज़ा देती है गुफ़्तारे-मुहब्बत
जो चारागर आया मेरी बालीं पे ये बोला
अल्लाह को सौंपा तुझे, बीमारे-मुहब्बत !
ख़ुसरो से जो चाकर हैं तो महमूद से बुरदे
अल्लाह रे अल्लाह रे सरकारे-मुहब्बत !

◇ ◇ ◇

गयी है न फ़ुरक़त की जायेगी रात, सहर को भी धब्बा लगायेगी रात
न मैं बात करता अगर जानता, कि यूँ बात करने में जायेगी रात
क़यामत के आसार हैं सुब्हे-हिज्र, न जाना था यह दिन दिखायेगी रात
न निकलेगा दिल कूचाए-ज़ुल्फ़ से, मुसाफ़िर को रस्ता भुलायेगी रात

◇ ◇ ◇

छिपती है कब छिपाये से ऐ ख़ूबरू पसंद
आंखें ये कह रही हैं कि आया है तू पसंद
ख़ामोश सुनती रहती है पहरों शबे-फ़िराक़
तस्वीरे-यार को है मेरी गुफ़्तगू पसंद

१. प्रेम-निवेदन के समय २. प्रलय की चाल ३. प्रेम-चर्चा

आंसू गिरा जो आंख से, तक़दीर ने कहा
मिलते हैं देख ख़ाक में यूं आबरू-पसंद

◇ ◇ ◇

बुख़ार अच्छा निकाला सोज़े-दिल ने चश्मे-गिरियां पर
कि हर आंसू बरंगे-आबला[1] है नोके-मिज़गां[2] पर
नुमूदे-सुबह[3] तक क्या जाने क्या-क्या रंग बदलेगी
अभी से बेकसी छायी है मेरी शामे-हिजरां पर

◇ ◇ ◇

यां दिल में ख़याल और है वां मद्दे-नज़र और
है हाल तबीयत का इधर और उधर और
दिल दे के लिया रंजो-अलम वाय री क़िस्मत
हम समझे थे कुछ और, हुआ हाय मगर और
हम जानते हैं ख़ूब तेरी तर्ज़े-निगह को
है क़हर की आंख और मुहब्बत की नज़र और
ऐ 'दाग़' मये-इश्क़ से क्या ज़हर को निस्बत
है इसमें असर और वो रखता है असर और

◇ ◇ ◇

ऐ दिल ख़ुशा वो दिल जो फिरे यार की तरफ़
दोनों जहां हैं ऐसे तरफ़दार की तरफ़
बैठे-बिठाये आयी जो शामत तो क्या इलाज
दिल ने कहा कि आओ चलें यार की तरफ़
तक़सीर मै-फ़रोश[4] की ऐ मोहतसिब नहीं
यह चीज़ उड़ के जाती है मैख़्वार की तरफ़

१. छाले की भांति २. पलकों की नोक ३. सवेरा होना ४. शराब बेचने वाला

दी जान किस खुशी से तहे-तेग़ 'दाग़' ने
लब पर तबस्सुम और नज़र यार की तरफ़

◇ ◇ ◇

क्यों न जहां में हों अयां[1] ऐबो-हुनर अलग-अलग
देखते हैं ब-चश्मे-ग़ौर अहले-नज़र[2] अलग-अलग
रूह-फ़ज़ा[3] किसी को है रूह-गुज़ा[4] किसी को है
बादाए-इश्क़ ने किया अपना असर अलग-अलग
किस का यक़ीन कीजिए किसका यक़ीं न कीजिए
लाये हैं उसकी बज़्म से यार खबर अलग-अलग
रंजे - फ़िराक़े - यार भी, सदमाए - रोज़गार[5] भी
एक दिल और इतने ग़म, चाहिएँ घर अलग-अलग
हश्र को उसने चुन लिये 'दाग़' गुनाहगारे-इश्क़
ताड़ गयी हज़ार में उसकी नज़र अलग-अलग

◇ ◇ ◇

क्या-क्या फ़रेब दिल को दिये इज़्तराब में
उनकी तरफ़ से आप लिखे खत जवाब में
कुछ शाने-मग़फ़रत[6] से नहीं दूर ज़ाहिदो,
डूबें गुनाह बादा-कशों[7] के शराब में
ऐ शैख़ जो बताये मये-इश्क़ को हराम
ऐसे के दो लगाये भिगोकर शराब में

१. प्रकट २. आंख वाले ३. आनंददायक ४. कष्टदायक ५. संसार का दुख ६. क्षमाशीलता (भगवान की) ७. शराबियों

ऐ 'दाग़' कोई मुझसा न होगा गुनाहगार
है मासियत[1] से मेरी जहन्नुम अज़ाब में

◇ ◇ ◇

इलाही क्या करें ज़ब्ते-मुहब्बत हम तो मरते हैं
कि नाले तीर बन-बनकर कलेजे में उतरते हैं
कहें क्या हम पे जो सदमे गुज़रते हैं गुज़रते हैं
लगाया जिस घड़ी दिल उस घड़ी को याद करते हैं
पए-ताज़ीम[2] उठती है क़यामत कूए-जानां[3] में
अजल[4] कहती है बिस्मिल्ला जहां हम पांव धरते हैं
न कुछ पूछो मुसीबत दर्दमंदाने-मुहब्बत की
ख़ुदा पर ख़ूब रोशन है गुज़र जिस तरह करते हैं
कभी यह दिल तमाशागाह था ऐशो-मुसर्रत का
अब इसमें हसरतो-शौक़ो-तमन्ना सैर करते हैं
कभी झुकता हूँ शीशे पर कभी गिरता हूँ साग़र पर
मेरी बेहोशियों से होश साक़ी के बिखरते हैं

◇ ◇ ◇

जब कहा और भी दुनिया में हसीं अच्छे हैं
क्या ही झुंझला के वो बोले कि हमीं अच्छे हैं
न उठा ख़्वाबे-अदम से हमें हंगामा-ए-हश्र[5]
कि पड़े चैन से हम ज़ेरे-ज़मीं अच्छे हैं
ख़ाक में, आह ! मिलाकर हमें क्या पूछते हो
ख़ैर, जिस तौर हैं वो ख़ाक-नशीं अच्छे हैं

१. पाप २. सम्मानार्थ ३. प्रियतम की गली ४. मौत ५. प्रलय के समय

हमको कूचे से तुम्हारे न उठाये अल्लाह
सदक़े बस ख़ुल्द[1] के कुछ हम तो यहीं अच्छे हैं
दिल में क्या ख़ाक जगह दूं तेरे अरमानों को
कि मकां है ये ख़राब और मकीं[2] अच्छे हैं
बुते-काफ़िर हैं कि ऐ 'दाग़' ख़ुदा उनसे बचाए
कौन कहता है ये ग़ारतगरे-दीं अच्छे हैं

◇ ◇ ◇

साज़[3] यह कीना-साज़[4] क्या जानें, नाज़ वाले नियाज़[5] क्या जानें
शमअ-रू[6] आप गो हुए लेकिन, लुत्फ़े-साज़ो-गुदाज़[7] क्या जानें
कब किसी दर की जिब्हसाई[8] की, शैख़ साहब नमाज़ क्या जानें
जो रहे-इश्क़ में क़दम रक्खें, वो नशेबो-फ़राज़[9] क्या जानें
हज़रते-ख़िज़्र जब शहीद न हों, लुत्फ़े-उम्रे-दराज़ क्या जानें
जो गुज़रते हैं 'दाग़' पर सदमे, आप बंदा-नवाज़ क्या जानें

◇ ◇ ◇

मैकशो ! मुज़्दा[10] कि घनघोर घटाएं आयीं
तुम पे रहमत हुई, तौबा पे बलाएं आयीं
किसकी ज़ुल्फें मुझे याद आयीं शबे-हिजरां में
कि बलाएं मेरी लेने को बलाएं आयीं
कूए-क़ातिल की ज़मीं पर जो रखा मैंने क़दम
आसमां से मेरे मातम की सदाएं आयीं

◇ ◇ ◇

---

१. स्वर्ग २. रहने वाले ३. निभाना ४. दुश्मनी रखने वाले ५. कृपा ६. दीपक जैसे मुखड़े वाले ७. घुलने का आनंद ८. माथा टेकना ९. ऊंच-नीच १०. शुभ संदेश

बाग़ में गुल खिले जाते हैं कि वह आते हैं
उंगलियां सर्व उठाते हैं कि वह आते हैं
जाने-मुश्ताक़ मेरी आंखों में आ जाती है
यार जब मुज़्दा सुनाते हैं कि वह आते हैं
साथ दुश्मन के वो क्या आये क़यामत आयी
ख़ाक में हमको मिलाते हैं कि वह आते हैं
दिलो-जां पास से जाते हैं कि वह जाते हैं
सब्रो-होशो-ख़िरद[1] आते हैं कि वह आते हैं
कौन आता है बुरे वक़्त किसी पास ऐ 'दाग़'
लोग दीवाना बनाते हैं कि वह आते हैं

◇ ◇ ◇

हज़रते-दिल आप हैं जिस ध्यान में, मर गये लाखों इसी अरमान में
इश्क़ जिस कश्ती का हो तू नाख़ुदा[2], वह न आये किस तरह तूफान में
गर फ़रिश्ता-वश[3] हुआ कोई तो क्या, आदमीयत चाहिए इंसान में
दिल की क़ीमत इक निगह है ऐ सनम, आगे जो आये तेरे ईमान में
जिसने दिल खोया उसी को कुछ मिला, फ़ायदा देखा इसी नुक़सान में

◇ ◇ ◇

दिल ही तो है न आये क्यों दम ही तो है न जाये क्यों
हमको ख़ुदा जो सब्र दे तुझसा हसीं बनाये क्यों
गो नहीं बंदगी क़बूल पर तेरा आस्तां[4] तो है
काबा-ओ-दैर में है क्या, ख़ाक कोई उड़ाये क्यों

◇ ◇ ◇

१. सब्र और अक़ल २. मांझी ३. फ़रिश्ते की तरह ४. चौखट

लाग हो या लगाव हो, कुछ भी न हो तो कुछ नहीं
बन के फ़रिश्ता ग्रादमी बज़्मे-जहां में ग्राये क्यों
इश्क़ो-जुनूं से मुझको लाग होशो-ख़िरद से इत्तफ़ाक़[1]
पर ये कहूं तो क्या कहूं मैंने सितम उठाये क्यों
पर्दाए-इश्क़ हो चुका 'दाग़' यही क़रार था
सब्र पे ग्राह ग्राह क्या ज़ब्त पे हाय हाय क्यों

◇ ◇ ◇

दिल्लगी उनकी दिल्लगी ही नहीं, रंज भी है फ़क़त हंसी ही नहीं
लुत्फ़े-मै तुझसे क्या कहूं ज़ाहिद, हाय कमबख़्त तूने पी ही नहीं
उड़ गयी यूं वफ़ा ज़माने से, कभी गोया किसी में थी ही नहीं
हम तो दुश्मन को दोस्त कर लेते, पर करें क्या, तेरी खुशी ही नहीं
हम तेरी ग्रारज़ू पे जीते हैं, वह नहीं है तो ज़िन्दगी ही नहीं
दिल-लगी दिल्लगी नहीं नासेह, तेरे दिल को ग्रभी लगी ही नहीं
'दाग़' क्यों तुम को बेवफ़ा कहता, वह शिकायत का ग्रादमी ही नहीं

◇ ◇ ◇

बने हुए हैं वो महफ़िल में सूरते-तस्वीर
हर एक को ये गुमां है इधर को देखते हैं
हमें गुमान ये होता है हमको रोता है
किसी जगह जो किसी नौहागर[2] को देखते हैं
मुक़ामे-रश्क[3] हुग्रा ग्रर्सांए-क़यामत[4] भी
तुझी को देखता है जिस बशर को देखते हैं
किसी से कुछ नहीं मतलब कि देखने वाले
तुम्हारी ग्रांख तुम्हारी नज़र को देखते हैं

१. मेल २. मातम करने वाला ३. ईर्ष्या की जगह ४. प्रलय-क्षेत्र

दैर से काबे को डरते हुए हम जाते हैं
देख लेता है जो कोई वहीं थम जाते हैं
दिल का क्या हाल कहूं सुबह को जब उस बुत ने
लेके अंगड़ाई कहा नाज़ से "हम जाते हैं"

◇ ◇ ◇

तेरी सूरत को देखता हूं मैं, उसकी क़ुदरत को देखता हूं मैं
देखने आये हैं जो नब्ज़ मेरी, उनकी सूरत को देखता हूं मैं
दूर बैठा हुआ सरे-महफ़िल, रंगे-सोहबत को देखता हूं मैं
कोई दुश्मन को यूं न देखेगा, जैसे क़िस्मत को देखता हूं मैं
हश्र में 'दाग़' कोई दोस्त नहीं, सारी ख़ल्क़त को देखता हूं मैं

◇ ◇ ◇

क्या कहूं अल्लाह क़ुदरत दे तो क्या पैदा करूं
पेशतर सबसे तेरे दिल में वफ़ा पैदा करूं
आफ़रीनश[1] से मेरी कुछ और तो मतलब न था
मुद्दआ यह था कि पैदा करके नापैदा करूं
रोज़ इक दिल मेरे सीने में ख़ुदा पैदा करे
और मैं अरमान उस दिल में नया पैदा करूं
ग़ैर को मेरे जलाने के लिए पैदा किया
वां तो यह था, आदमी हर काम को पैदा करूं
दिल को है ऐ 'दाग़' उम्रे-जाविदां की आरज़ू
मैं कहां से चश्माए-आबे-बक़ा[2] पैदा करूं

◇ ◇ ◇

१. आदि-काल २. अमृत का चश्मा

मज़े इश्क़ के कुछ वही जानते हैं,
कि जो मौत को ज़िंदगी जानते हैं,
न हो दिल तो क्या लुत्फ़े-आज़ारो-राहत[1]
बराबर ख़ुशी नाख़ुशी जानते हैं
नहीं जानते इसका अंजाम क्या है,
वो मरना मेरा दिल्लगी जानते हैं
समझता है तू 'दाग़' को रिन्द ज़ाहिद,
मगर रिन्द उसको वली जानते हैं

◇ ◇ ◇

गले मिला है वो मस्ते-शबाब बरसों में
हुआ है दिल को सरूरे-शराब बरसों में
ख़ुदा करे कि मज़ा इन्तज़ार का न मिटे
मेरे सवाल का वो दें जवाब बरसों में
बचेंगे हज़रते-ज़ाहिद कहीं बग़ैर पिये
हमारे हाथ लगे हैं जनाब बरसों में
हया-ओ-शर्म तुम्हारी गवाह है इसकी
हुआ है आज कोई कामयाब बरसों में
हमारे बाद कुछ ऐसा हुआ मिज़ाज उनका
कि लुत्फ़ रोज़ है सब पर, अ़ताब[2] बरसों में
निगाहे-मस्त से उनकी हुआ ये हाल मेरा
कि जैसे पी हो किसी ने शराब बरसों में

◇ ◇ ◇

१. सुख-दुख का आनंद २. कोप

कुछ चाहिए बशर के लिए ग़म की छेड़-छाड़
हम भी न हों अगर सितमे - आसमां न हो
नैरंगिए - चमन[1] जो मुझे याद आ गयी
गुल पर हुआ गुमान कि बर्गे - ख़िज़ां[2] न हो
तोहमत किसी को ज़ुल्म की ऐ 'दाग़' क्यों लगायें
शिकवा बुतों से क्या जो ख़ुदा मेहरबां न हो

◇ ◇ ◇

हम तो मरते हैं अदा पर दिलसतां[3] हो कोई हो
दोस्त, दुश्मन, मेहरबां, ना-मेहरबां हो, कोई हो
आदमी के वास्ते चश्मे-बसीरत[4] चाहिए
दिल से हो मंज़ूर, नज़रों से निहां हो, कोई हो

◇ ◇ ◇

देखे मस्ती में जो सरगर्मे-तकल्लुम[5] मुझको
कहे वाइज़ भी कि लिल्लाह कोई ख़ुम[6] मुझको
जम गयी गर्दे - रहे - मैकदा[7] मुझ पर वाइज़
ख़ाक से पाक करे बहर[8] न क़ुलज़ुम[9] मुझको

◇ ◇ ◇

यां तो निबाहे जाते हैं इश्क़े-बुतां के साथ
ज़ाहिद ! निबेड़ लेंगे वहां की वहां के साथ
फूँका न दाम को न जलाया क़फ़स मेरा
बिजली की तेज़ियां थीं फ़क़त आशियां के साथ

---

१. बाग़ के परिवर्तन २. मुर्झाया पत्ता ३. प्रियतम ४. आंतरिक दृष्टि ५. वार्ता-मग्न ६. मटका ७. मधुशाला के मार्ग की धूल ८. समुद्र ९. महासागर

सब को है तेरी याद की लज़्ज़त जुदा-जुदा
दिल की है दिल के साथ ज़बां की ज़बां के साथ
इक़रारे - हश्र[1] ऐ दिले-मुज़्तर ग़लत न जान
थोड़ा यक़ीं भी चाहिए वहमो-गुमां के साथ
अल्लाह करे बन्द न हो 'दाग़' की ज़बान
तारीफ़ आपकी उसी गुलशन-बयां[2] के साथ

◇ ◇ ◇

यारब हमें दे इश्क़े - सनम[3] और ज़ियादा
कुछ तुझ से नहीं मांगते हम और ज़ियादा
यारब हैं मेरे साथ बहुत हसरतो - अरमां
हो वुसअ़ते - सहराए - अ़दम[4] और ज़ियादा

◇ ◇ ◇

मुझको जन्नत में न राहत होगी, गर यही दिल यही क़िस्मत होगी
तेरे हाथों मुझे ऐ रंजे-फ़िराक़, कभी मरने की भी फ़ुरसत होगी
कूचाए - यार कहीं छुटता है, मैं न हूंगा मेरी तुरबत होगी
अब की मैख़ाने से उठकर ऐ 'दाग़', काबे जायेंगे जो वहशत होगी

◇ ◇ ◇

तदबीर से क़िस्मत की बुराई नहीं जाती
बिगड़ी हुई तक़दीर बनाई नहीं जाती
मैं पी तो सही तौबा भी हो जायेगी ज़ाहिद
कमबख़्त क़यामत अभी आई नहीं जाती

१. प्रलय के दिन मिलने का वादा २. सुकवि ३. प्रियतम का प्रेम
४. मृत्यु के जंगल का फैलाव

आंसू न पिये जायेंगे ऐ नासहे - नादां
हीरे की कनी जान के खाई नहीं जाती
गिरती है नशेमन[1] पे मेरे कौंद के बिजली
सय्याद के घर आग लगाई नहीं जाती
बे-देखे यहां दिल में है क्या एक तमन्ना
वह ता-ब-ज़बां[2] ख़ौफ़ से लाई नहीं जाती
यारब कोई आफ़त था मुहब्बत का पतंगा
वह आग लगी है कि बुझाई नहीं जाती

◇ ◇ ◇

छूटे हज़ार मर्तबा क़ातिल के हाथ से
निकले न एक बार भी हम दिल के हाथ से
ऐ इज़्तराबे-शौक़[3] ये कैसा असर किया
तलवार छूटी पड़ती है क़ातिल के हाथ से
कोई समझ के बात करे तो जवाब दें
दम नाक में है नासहे-जाहिल के हाथ से

◇ ◇ ◇

इस अंजुमन से बहुत बेक़रार होके चले
सरूर होके हम आये ख़ुमार होके चले
बुतों के कूचे से हम दिल-फ़िगार[4] होके चले
शिकार करने को आये शिकार होके चले

◇ ◇ ◇

१. घोंसला २. मुँह तक ३. प्रेम की बेचैनी ४. दुखी

तबीयत कोई दिन में भर जायगी, चढ़ी है ये आंधी उतर जायगी
रहेंगी दमे-मर्ग[1] तक ख़्वाहिशें, ये नीयत कोई आज भर जायगी
न थी यह ख़बर हमको अपनी बहार, इधर आयेगी और उधर जायगी
न गुज़री शबे-हिज्र समझे थे हम, तड़पते फड़कते गुज़र जायगी
शबे-वादा आजाओ वर्ना क़ज़ा, मेरे सर पे अहसान धर जायगी
दिया दिल तो ऐ 'दाग़' अंदेशा क्या, गुज़रनी जो होगी गुज़र जायगी

◇ ◇ ◇

हसरतें ले गये इस बज़्म से चलने वाले
हाथ मलते ही उठे इत्र के मलने वाले
वो गये गोरे-ग़रीबां[2] पे तो आयी ये सदा[3]
थम ज़रा ओ रविशे-नाज़[4] से चलने वाले
दिले-बेताब ! वो आते हैं ख़बर आती है
सब्र कर सब्र ज़रा मेरे मचलने वाले

◇ ◇ ◇

दिल से वह बे-अख़्तियारी उठ गई, अब तमन्ना ही तुम्हारी उठ गई
वाय दुश्मन हो गया सारा जहां, हाय रस्मे-दोस्तदारी उठ गई
रह गये लाखों कलेजा थाम कर, आँख जिस जानिब तुम्हारी उठ गई
इश्क़ ने बेबाक आख़िर कर दिया, अब वो शर्मे-आहोज़ारी उठ गई
किससे रक्खे 'दाग़' रस्मे-दोस्ती, उठ गई यारों से यारी उठ गई

◇ ◇ ◇

बे-मिस्ल किया उस बुते-काफ़िर को ख़ुदा ने
समझे कि न समझे कोई माने कि न माने

१. मृत्यु के समय २. ग़रीबों की क़ब्र ३. आवाज़ ४. इठलाती चाल

जब दिल में तुम्हारे ही नहीं घर तो कहां घर
क्या पूछते हो ख़ानाख़राबों के ठिकाने
अंदाज़ कहे देते हैं कुश्ते[1] के तुम्हारे
लूटा है इसी नाज़ ने मारा है अदा ने
मरते हैं तेरे कूचे में पामाले-मुहब्बत[2]
घर देख लिया गुलशने-जन्नत में क़ज़ा ने
मैख़ाना है और 'दाग़' है और नश्शाए-मै है
सोता है रखे खिश्ते-ख़ुमे-बादा[3] सिरहाने

◇ ◇ ◇

चारागर हम होश में आयेंगे क्या तदबीर से
अक़्ल दीवानी नहीं बांधें जिसे ज़ंजीर से
बढ़ गई वहशत ज़ियादा चारा-ओ-तदबीर से
और दूने पांव अपने खुल गये ज़ंजीर से
जब लड़ी हैं वो निगाहें आशिक़े-दिलगीर से
चुभ गयी हैं बर्छियां सी खुब गये हैं तीर से
हर सुख़न[4] में गर्चे सौ पहलू बचाता हूं मगर
आरज़ूएं टपकी पड़ती हैं मेरी तक़रीर से
'दाग़' जलने के लिए काफ़ी है उसकी बज़्म में
काट डालें कोई परवाने का सर गुलगीर से

◇ ◇ ◇

१. मारा हुआ २. मुहब्बत के मारे ३. शराब के मटके का खिपड़ा
४. बात

कहने देती नहीं कुछ मुंह से मुहब्बत तेरी
लब पे आ जाती है रह रह के शिकायत तेरी
अब तेरा ऐ दिले-बेताब ख़ुदा हाफ़िज़ है
कर चुके हम तो मुहब्बत में हिफ़ाज़त तेरी
याद सब कुछ हैं मुझे हिज्र के सदमे ज़ालिम
भूल जाता हूं मगर देख के सूरत तेरी
यारो-ग़मख़्वार मेरे हाल को सब पूछते हैं
और फिर पूछ के कहते हैं कि क़िस्मत तेरी
कूचाए-यार में भी जो नहीं लगता ऐ 'दाग़'
देखिए जायेगी किस रोज़ ये वहशत तेरी

◇ ◇ ◇

इश्क़ का लुत्फ़ ग़म से उठता है, ग़म जो उठता है हम से उठता है
फ़ित्ना उनके क़दम से उठता है, हर क़दम किस सितम से उठता है
उसकी क़ाफ़िर निगह के उठते ही, शोर दैरो-हरम से उठता है
ज़ुल्म तेरा उठाये जाते हैं, जब तक ऐ यार हम से उठता है
किस से उठता है सदमाए-उल्फ़त, यह हमारे ही दम से उठता है
गर न ठुकराये वह तो फिर ऐ 'दाग़', कौन ख़्वाबे-अदम[1] से उठता है

◇ ◇ ◇

निकाल अब तीर सीने से कि जाने-पुरअलम[2] निकले
जो यह निकले तो दिल निकले जो दिल निकले तो दम निकले
मेरे दिल से कोई पूछे शबे-फ़ुरक़त की बेताबी
यही फ़रियाद थी लब पर कि यारब जल्द दम निकले

१. मौत की नींद २. दुखी प्राण

हुए मग़रूर वो जब आह मेरी बे-असर देखी
किसी का इस तरह यारब न दुनिया में भरम निकले
न उट्ठे मर के भी ऐसे तेरे कूचे में हम बैठे
मुहब्बत में अगर निकले तो हम साबित-क़दम निकले
रहे-उल्फ़त में इक सीधा-सा रस्ता हमने जाना था
मगर देखा तो इस रस्ते में सदहा[1] पेचो-ख़म निकले
समझ कर रहम-दिल तुम को दिया था हमने अपना दिल
मगर तुम तो बला निकले ग़ज़ब निकले सितम निकले
गये हैं रंजो-ग़म ऐ 'दाग़' बादे-मर्ग साथ अपने
अगर निकले तो ये अपने रफ़ीक़ाने-अ़दम[2] निकले

◇ ◇ ◇

लग चली बादे-सबा क्या किसी मस्ताने से
झूमती आज चली आती है मैख़ाने से
रूह किस मस्त की प्यासी गई मैख़ाने से
मै उड़ी जाती है साक़ी तेरे पैमाने से
गिर पड़ा हूं निगहे-मस्त से चक्कर खाकर
साक़िया पहले उठा तू मुझे पैमाने से
दिले-बरबाद में आबाद हुए इश्क़ो-जुनूं
कोई बस्ती नहीं बेहतर मेरे वीराने से
एक चुल्लू में बहुत 'दाग़' बहक उट्ठे थे
सुनते हैं आज निकाले गये मैख़ाने से

◇ ◇ ◇

१. सैंकड़ों २. मृत्यु-लोक के साथी

कुछ अजब तौर कटी बेख़ुदीए-शौक़[1] में राह
दो क़दम ठीक चले चार क़दम भूल गये
लिखने बैठे थे उन्हें हाल परेशानी का
हर्फ़े-मतलब को उठाते ही क़लम भूल गये
बुर्रशे-तेग़े-फ़ना[2] में भी अजब लज़्ज़त हैं
ज़िंदगानी के मज़े अहले-अदम भूल गये
इश्क़ की राह में जब काफ़िरो-दीदार आये
सब के सब 'दाग़' रहे-दैरो-हरम भूल गये

◇ ◇ ◇

क्यों शबे-हिज्र मेरे सर पे बला लाती है
अपने हमराह अजल को भी लगा लाती है
नहीं मालूम कि है मंज़िले-मक़सूद[3] कहां
अर्श तक की तो ख़बर आहे-रसा लाती है
कौन मरने को तेरे कूचे में ख़ुद आता है
पर ये बेताबी-ए-दिल है कि उड़ा लाती है
कूचाए-यार में यह हसरते-दीदार मुझे
रोज़ लेजाके नई सैर दिखा लाती है

◇ ◇ ◇

मुझे ऐ अहले-काबा ![4] याद क्या मैख़ाना आता है
इधर दीवाना जाता है, उधर दीवाना आता है
दमे-तक़रीर[5] नाले हल्क़ में छुरियां चुभोते हैं
ज़बां तक टुकड़े हो-होकर मेरा अफ़साना आता है

१. प्रेम की आत्म-विस्मृति २. मृत्यु-रूपी खड्ग की काट ३. लक्ष्य-स्थान ४. काबे वाले ५. बोलते समय

रुख़े-रौशन[1] के आगे शम्मअ़ रख कर वो ये कहते हैं
उधर जाता है देखो या इधर परवाना आता है
वही झगड़ा है फ़ुरक़त का वही क़िस्सा है उल्फ़त का
तुझे ऐ 'दाग़' कोई और भी अफ़साना आता है

◇ ◇ ◇

कौन ग़मख़्वार इलाही शबे-ग़म होता है
अब तो पहलू में मेरे दर्द भी कम होता है
याद आ जाते हैं जब ज़ख़्मे-मुहब्बत के मज़े
शरबते-ख़िज़्र[2] भी हक़ में मेरे सुम[3] होता है

◇ ◇ ◇

शौक़ में एक फ़ित्ना-क़ामत[4] के, हम गले मिल गये क़यामत के
याद रह जाएगी जफ़ा तेरी, दिन गुज़र जायेंगे मुसीबत के
उसने पूछा मिज़ाज कैसा है, रंग अब देखना तबीयत के
वो नज़ाकत से थक गये चलकर, लो क़दम गड़ गये क़यामत के
'दाग़' सा दूसरा न देखोगे, गुल हज़ारों हैं एक सूरत के

◇ ◇ ◇

किया था जुर्मे-वफ़ा लज़्ज़ते-सज़ा के लिए
सितम के लुत्फ़ उठाये मज़े जफ़ा के लिये
बड़ा मज़ा हो जो महशर में हम करें शिकवा
वो मिन्नतों से कहें चुप रहो ख़ुदा के लिए
असर तो लूट लिया बात बात ने तेरी
रहा न कुछ भी मेरी अर्ज़े-मुद्दआ़[5] के लिए

१. सुन्दर मुख २. अमृत ३. विष ४. अति सुन्दर क़द वाले प्रियतम
५. प्रेम-निवेदन

किसी ज़माने में गुस्ताख़ हम भी थे अब तो
ज़बां है बहरे-सताइश[1] दिल इल्तजा के लिए

◇ ◇ ◇

पूछता जा मेरे मरक़द पे गुज़रने वाले
क्या गुज़रती है तेरे हाल पे मरने वाले
मंज़िले-ऐश[2] नहीं है ये सराए-फ़ानी[3]
रात की रात ठहर जायें ठहरने वाले
मदफ़ने-अहले-वफ़ा[4] पर ये दुआ की उसने
हश्र के दिन भी न पैदा हों ये मरने वाले
दुख़्तरे-रिज़[5] है बहुत तेज़-मिज़ाज ऐ ज़ाहिद
तेरा क्या मुंह है, इसे भरते हैं भरने वाले

◇ ◇ ◇

क़त्ल होंगे तेरे हाथों से ख़ुशी इसकी है
आज इतराये हुए फिरते हैं मरने वाले
हज़रते-'दाग़' जहां बैठ गये बैठ गये
और होंगे तेरी महफ़िल से उभरने वाले

◇ ◇ ◇

थक थक के न बैठेंगे न मर मर के उठेंगे
अब ज़ुल्म न हम से दिले-मुज़्तर के उठेंगे
बेकार है तक़लीद[6] रहे-शौक़ में सच है
मालूम न था पांव न रहबर के उठेंगे

◇ ◇ ◇

१. प्रशंसा के लिए २. आराम की जगह ३. असार संसार
४. प्रेमियों की क़ब्र ५. शराब ६. अनुसरण

न समझा उम्र गुज़री उस बुते-ख़ुदसर[1] को समझाते
पिघलकर मोम हो जाता अगर पत्थर को समझाते
हमारी कौन सुनता है वगर्ना हम दमे-रुख़सत
इधर कुछ दिल को समझाते उधर दिलबर को समझाते
हुए मुल्ज़िम हमें समझा के तुम ऐ हज़रते-नासह
समझकर बंदा-परवर ऐसे दानिशवर[2] को समझाते
ख़ुदा जाने कहां से राहे-उल्फ़त में कहां पहुंचे
जो होता होश कुछ हमको तो हम रहबर को समझाते
शबे-फ़ुरक़त तड़पना 'दाग़' का देखा नहीं जाता
गुज़र जाती है सारी रात सारे घर को समझाते

◇ ◇ ◇

क्या कहिए किस तरह से जवानी गुज़र गई
बदनाम करने आई थी बदनाम कर गई
ज़ाहिद शराबे-नाब[3] की तासीर कुछ न पूछ
अक्सीर है जो हल्क़ के नीचे उतर गई
दम भर में कुछ भी याद नहीं इसको क्या करूं
नासह ने जो कही मेरे दिल से उतर गई
रहती है कब बहारे-जवानी तमाम उम्र
मानिन्दे-बूए-गुल इधर आई उधर गई
ऐ 'दाग़' क्या कहूं शबे-फ़ुरक़त की वारदात
जो मेरे हाथ से मेरे दिल पर गुज़र गई

◇ ◇ ◇

१. गर्वीला प्रियतम २. बुद्धिमान ३. अच्छी शराब

सबक़ ऐसा पढ़ा दिया तूने
दिल से सब कुछ भुला दिया तूने
हम निकम्मे हुए ज़माने के
काम ऐसा सिखा दिया तूने
कुछ तअ़ल्लुक़ रहा न दुनिया से
शग़ल ऐसा बता दिया तूने
लाख देने का एक देना है
दिले - बेमुद्दआ़[1] दिया तूने
क्या बताऊं कि क्या लिया मैंने
क्या कहूं मैं कि क्या दिया तूने
बे - तलब जो मिला मिला मुझको
बे - ग़रज़ जो दिया दिया तूने
कहीं मुश्ताक़[2] से हिजाब[3] हुआ
कहीं पर्दा उठा दिया तूने
मिट गये दिल से नक़्शे-बातिल[4] सब
नक़्शा अपना जमा दिया तूने
मुझ गुनहगार को जो बख़्श दिया
तो जहन्नुम को क्या दिया तूने
'दाग़' को कौन देने वाला था
जो दिया ऐ ख़ुदा दिया तूने

◇ ◇ ◇

तड़पने से दिले - बेताब कोई ग़म निकलता है
ठहर जा, सब्र कर, मुज़्तर न हो, क्यों दम निकलता है

१. निष्काम हृदय २. प्रेमी ३. पर्दा ४. झूठी बातें

हज़ारों हसरतें सर पीटती हैं खानाए-दिल में
इलाही देखिए इस घर से कब मातम निकलता है
कोई क्या नब्ज़ देखे, दस्तगीरी[1] क्या करे क़िस्मत
तेरे बीमारे-ग़म का हाथ पकड़े दम निकलता है
तलव्वुन[2] इस क़दर ऐ 'दाग़' फिर यह सब्र के दावे
घड़ी में तौबा करते हो घड़ी में दम निकलता है

◇ ◇ ◇

काबे की है हविस कभी कूए-बुतां[3] की है
मुझको खबर नहीं मेरी मिट्टी कहां की है
पैग़ाम्बर की बात पे आपस में रंज क्या
मेरी ज़बां की है न तुम्हारी ज़बां की है
हसरत बरस रही है हमारे मज़ार पर
कहते हैं सब ये क़ब्र किसी नौजवां की है
दामन संभाल, बांध कमर, आस्तीं चढ़ा,
खंजर निकाल, दिल में अगर इम्तहां की है
उर्दू है जिसका नाम हमीं जानते हैं 'दाग़'
हिन्दोस्तां में धूम हमारी ज़बां की है

◇ ◇ ◇

ग़म उठाने के वास्ते दम है, ज़िंदगी है अगर तो क्या ग़म है
आये हैं वो रक़ीब के घर से, इक खुशी है तो एक मातम है
गिरिया-ए-बेअसर की कुछ हद भी, हम हैं और आज चश्मे-पुरनम है
इक जहां मेहरबां हुआ तो क्या, मेहरबानी तेरी मुक़द्दम है
सुनते हैं 'दाग़' कल वो आये थे, बारे अब तो सलूक बाहम है

१. सहायता २. अस्थिरता ३. माशूक़ों की गली

रुबाइयां

बेगाना यहां हर एक यगाना देखा
अपने मतलब का सब ज़माना देखा
जिसको देखा ग़रज़-ग़रज़ का अपने
दुनियां का अजीब कारख़ाना देखा

◇ ◇ ◇

दुनिया में कब इंसान की हाजत निकली
हसरत ही रही कोई न हसरत निकली
जीते थे क़यामत की तवक़्क़ो पर हम
ख़ुद वक़्त की मोहताज क़यामत निकली

◇ ◇ ◇

कहते थे न इश्क़े-बुते-ख़ुदकाम करो
पहले ही से अंदेशाए-अंजाम करो
बेताबी-ए-दिल की है शिकायत नाहक़
ऐ 'दाग़' बस अब क़ब्र में आराम करो

◇ ◇ ◇

नव्वाब ने की जो क़द्रदानी मेरी
ऐ 'दाग़' गुज़र गई जवानी मेरी
लेकिन ये ख़बर न थी कि वक़्ते-पीरी
मर मर के कटेगी ज़िन्दगानी मेरी

◇ ◇ ◇

आफ़ताबे-दाग़ से संकलन

ग़ज़लें

एक ही रंग है सब से ये तमाशा कैसा
कोई कैसा है कोई चाहने वाला कैसा
डूबते हैं अरक़े-शर्म[1] में ग़ैरत वाले
डूब मरने ही पे जब आये तो दरिया कैसा
नामाबर तूने भी देखा है उसे, सच कहना
गात कैसा है फबन कैसी है नक़्शा कैसा
तेरे क़ुरबान कोई दम यही तकरार रहे
दिल हमारा है हमारा है तुम्हारा कैसा
तुम सलामत हो तो हर रोज़ क़यामत होगी
हम भी देखेंगे तमाशे पे तमाशा कैसा
ग़ैर का ज़िक्रे-वफ़ा और हमारे आगे
'दाग़' इस बात से जलता है कलेजा कैसा

◇ ◇ ◇

मरने ही पे जब आये तो क्यों डूब के मरिये
क्या ख़ाक में मिल जाने को साहिल[2] नहीं होता

◇ ◇ ◇

१. शर्म का पसीना २. तट

इश्क़ तासीर जो करता तो न पिनहां[1] होता
रंज मेरा तेरे चेहरे से नुमायां[2] होता
क्या ग़ज़ब है नहीं इंसान को इंसान की क़द्र
हर फ़रिश्ते को ये हसरत है कि इंसां होता
मरज़े - इश्क़ तबीबों[3] ने बहुत उलझाया
आख़िरे - कार ये आज़ार ही दरमां[4] होता
होगयी बारे - गिरां[5] बंदा - नवाज़ी[6] तेरी
तू न करता अगर अहसान तो अहसां होता
'दाग़' को हमने मुहब्बत में बहुत समझाया
वह कहा मान न लेता अगर इंसां होता

◇ ◇ ◇

इस काबा-ए-दिल को कभी वीरां नहीं देखा
उस बुत को कब अल्लाह का मेहमां नहीं देखा
क्या हमने अज़ाबे - शबे - हिजरां नहीं देखा
तुमको न यक़ीं आये तो हां-हां नहीं देखा
क्या तूने मेरा हाले - परेशां नहीं देखा
इस तरह से देखा कि मेरी जां नहीं देखा
क्या ज़ौक़ है क्या शौक़ है सौ मर्तबा देखूं
फिर भी ये कहूं जल्वा-ए-जानां[7] नहीं देखा
जो देखते हैं देखने वाले तेरे अंदाज़
तूने वो तमाशा ही मेरी जां नहीं देखा

१. छिपा २. प्रकट ३. चिकित्सकों ४. इलाज ५. भारी बोझ
६. कृपा ७. प्रियतम की ज्योति

जो दिन मुझे तक़दीर की गर्दिश ने दिखाया
तूने भी वो ऐ गर्दिशे - दौरां[1] नहीं देखा
कहती है मेरी क़ब्र पे रो-रो के मुहब्बत
यूं ख़ाक में मिलते हुए अरमां नहीं देखा
क्यों पूछते हो कौन है यह किसकी है शोहरत
क्या तुमने कभी 'दाग़' का दीवां नहीं देखा

◇ ◇ ◇

हश्र में भी मुब्तला[2] उस पर जहां हो जायगा
जो यहां होता है वह इक दिन वहां हो जायगा
दिल से भी बातें नहीं करता कभी मैं इसलिए
वो सितमगर बदगुमां, यह राज़दां हो जायगा
हुस्न तेरा इश्क़ मेरा है बलाए-रोज़गार[3]
आफ़त आजायेगी यह चर्चा जहां हो जायगा
दिल को मुद्दत में किया था ख़ूगरे-तर्ज़े-सितम[4]
क्या ख़बर थी वह यकायक मेहरबां हो जायगा
'दाग़' को हम यह न समझे थे कि तेरे इश्क़ में
हाय ऐसा शख़्श यूं बे-ख़ानमां[5] हो जायगा

◇ ◇ ◇

मेरे ही दम से मेहरो-वफ़ा[6] का निशां है अब
तुझ-सा मगर नहीं है तो मुझ-सा कहां है अब
इस हाल को पहुंच गयीं दिल की ख़राबियां
तेरे मकां है अब न ख़ुदा का मकां है अब

१. ज़माने का चक्कर २. आसक्त ३. दुनिया की बला ४. अत्याचारों का अभ्यस्त ५. बर्बाद ६. प्रेम

सीने से मेरे दस्ते - तसल्ली उठाइए
यह भी दिले-नहीफ़[1] को बारे-गिरां[2] है अब
क्या लुत्फ़े-दोस्ती कि नहीं लुत्फ़े-दुश्मनी
दुश्मन को भी जो देखिए पूरा कहां है अब
तुमको यक़ीं नहीं तो न हो इसका क्या इलाज
कमबख़्त 'दाग़' तुमसे बहुत बदगुमां है अब

◇ ◇ ◇

आलमे - यास[3] में घबराये न इन्सान बहुत
दिल सलामत है तो हसरत बहुत अरमान बहुत
क़त्ल होने न दिया शुक्रे-जफ़ा ने मुझको
काम आते हैं बुरे वक़्त में औसान बहुत
तुम कि बेदाद करो और न शरमाओ ज़रा
हम कि नाकर्दा-गुनाह और पशेमान बहुत
हसरतें रोज़ नयी दिल में भरी जाती हैं
थोड़े-थोड़े ही हुए जाते हैं मेहमान बहुत
सोचिए दिल में तो है इश्क़ निहायत दुश्वार
न समझिए तो यही काम है आसान बहुत
वादा करते ही पलट जाओ हम इससे ख़ुश हैं
दिले-ग़मगीं को ख़ुशी की तो है इक आन बहुत
दिल से किस तरह भुलाऊं तुझे ऐ पर्दा-नशीं
बेख़ुदी में भी तो रहता है तेरा ध्यान बहुत
न हुई बात में ऐ हज़रते - वाइज़ तासीर
यह मुसल्लम[4] कि पढ़ा आपने क़ुरआन बहुत

---

१. अशक्त हृदय २. भारी बोझ ३. निराशा ४. मानी हुई बात

बज़्मे-अहबाब में ऐ 'दाग़' कभी तो हँस-बोल
देखते हैं तुझे हर वक़्त परेशान बहुत

◇ ◇ ◇

उसको हसरत न रहे दुश्मने - ईमां होकर
कोई दिन देख लो ऐ 'दाग़' मुसलमां होकर
हम तो उस दाग़ के क़ायल हैं जो चमके ताहश्र[1]
दिल के पर्दे में चिराग़े-तहे-दामां[2] होकर
नाले रह जाते हैं रुक-रुकके मेरे सीने में
तीर बैठा है तेरा हल्क़ का दरबां होकर

◇ ◇ ◇

बुत को बुत और ख़ुदा को जो ख़ुदा कहते हैं
हम भी देखें तो उसे देख के क्या कहते हैं
कुछ तुम्हारे लबे-एजाज़-नुमा[3] कहते हैं
पर समझ में नहीं आता कि ये क्या कहते हैं
जो भले हैं वो बुरों को भी भला कहते हैं
न बुरा सुनते हैं अच्छे न बुरा कहते हैं
उसके हाथों से यही ज़िल्लतो-ख़्वारी होगी
ग़ैर तो अपनी ख़बर लें मुझे क्या कहते हैं
मैं गुनहगार अगर इश्क़े-मजाज़ी है गुनाह
मैं ख़तावार अगर इसको ख़ता कहते हैं
पहले तो 'दाग़' की तारीफ़ हुआ करती थी
अब ख़ुदा जाने वो क्यों उसको बुरा कहते हैं

१. प्रलय तक २. आंचल में छिपा दीपक ३. जादू डालने वाले होंठ

बुताने - माहवश[1] उजड़ी हुई मंज़िल में रहते हैं
कि जिसकी जान जाती है उसी के दिल में रहते हैं
हज़ारों दाग़ पिनहां[2] आशिक़ों के दिल में रहते हैं
शरर[3] पत्थर की सूरत उनके आबो-गिल[4] में रहते हैं
मुहब्बत में मज़ा है छेड़ का लेकिन मज़े की हो
हज़ारों लुत्फ़ हरइक शिकवाए-बातिल[5] में रहते हैं
हज़ारों हसरतें वो हैं कि रोके से नहीं रुकतीं
बहुत अरमान ऐसे हैं कि दिल के दिल में रहते हैं
न देखे होंगे रिंदों[6] से भी तूने पाक ऐ ज़ाहिद
कि ये बे-दाग़ मैख़ाने के आबो-गिल में रहते हैं
ख़ुदा रक्खे मुहब्बत ने किये आबाद दोनों घर
मैं उनके दिल में रहता हूं वो मेरे दिल में रहते हैं
बुतों को महरमे - असरार[7] तूने क्यों किया यारब
कि ये काफ़िर हरइक ख़िलवतसराए-दिल[8] में रहते हैं
तन-आसानी कहां तक़दीर में हम दिल-गिरफ़्तों[9] की
ख़ुदा पर ख़ूब रौशन है कि जिस मुश्किल में रहते हैं
हमें दुश्वार जीना, आर[10] तुमको क़त्ल करने से
बड़ी मुश्किल में रखते हो, बड़ी मुश्किल में रहते हैं
कोई नामो - निशां पूछे तो ऐ क़ासिद बता देना
तख़ल्लुस 'दाग़' है और आशिक़ों के दिल में रहते हैं

◇ ◇ ◇

---

१. सुन्दर व्यक्ति २. छिपे ३. चिंगारी ४. पानी-मिट्टी ५. झूठी शिकायतें ६. शराबियों ७. भेद जानने वाला ८. हृदय के एकांत ९. दुखियों १०. परहेज़

भवें तनतीं हैं ख़ंजर हाथ में है तनके बैठे हैं
किसी से आज बिगड़ी है जो वो यूँ बनके बैठे हैं
दिलों पर सैकड़ों सिक्के तेरे जोबन के बैठे हैं
कलेजों पर हज़ारों तीर उस चितवन के बैठे हैं
इलाही क्यों नहीं उठती क़यामत माजरा क्या है
हमारे सामने पहलू में वो दुश्मन के बैठे हैं
ये गुस्ताख़ी, ये छेड़ अच्छी नहीं है ऐ दिले-नादां
अभी फिर रूठ जायेंगे अभी वो मन के बैठे हैं
असर है जज़्बे-उल्फ़त में तो खिंचकर आ ही जायेंगे
हमें परवा नहीं हम से अगर वो तनके बैठे हैं
खड़े हों ज़ेरे-तूबा[1] वो न दम लेने को दमभर भी
जो हसरतमंद तेरे सायाए - दामन में बैठे हैं
तलाशे मंज़िले-मक़सद[2] की गर्दिश[3] उठ नहीं सकती
कमर खोले हुए रस्ते में हम रहज़न[4] के बैठे हैं
ये उठना बैठना महफ़िल में उनका रंग लायेगा
क़यामत बनके उट्ठेंगे भभूका बनके बैठे हैं

◇ ◇ ◇

आशिक़ के दिल में और तेरी आरज़ू न हो ?
इस बाग़ का तू फूल है फिर इसमें बू न हो ?
ऐ दर्दे - इश्क़ ख़ानाए - दिल घर तेरा सही
आबाद यह मकान तो जब हो कि तू न हो

१. स्वर्ग के वृक्ष तूबा के नीचे २. लक्ष्य-स्थान ३. घूमना ४. डाकू

इस फ़िक्र में कुछ उनसे न हम बात कर सके
यह गुफ़्तगू न हो कहीं वह गुफ़्तगू न हो
हम बादानोश[1] पांव न रक्खें बहिश्त में
जब तक हमारे सामने जामो-सुबू[2] न हो

◇ ◇ ◇

मौत उस दिन को कि तुझ से सितम ईजाद न हो
मैं तो मर जाऊं अगर लज़्ज़ते-बेदाद न हो
बात का ज़ख़्म है तलवार के ज़ख़्मों से सिवा
कीजिए क़त्ल मगर मुंह से कुछ इरशाद न हो
हाय वो दिल वो कलेजा मैं कहां से लाऊं
वस्ल में शाद न हो हिज्र में नाशाद न हो
जौर के बाद है अब हर्फ़े - तसल्ली कैसा
उससे फ़रमाइए जिसको वो घड़ी याद न हो
देख ऐ शामे - ग़रीबी[3] वो मुसाफ़िर मैं हूँ
जिसका घरबार न हो जिसको वतन याद न हो
आदमी है वो जो चितवन का इशारा समझे
मुझको मालूम हुआ मुंह से कुछ इरशाद न हो
है मेरे दिल की तबाही पे तअ़ज्जुब क्या ख़ूब
आप बरबाद करें जिसको वो बरबाद न हो ?
कोसते हैं वो इलाही कि दुआ़ देते हैं
'दाग़' को देख के कहते हैं ये नाशाद न हो

◇ ◇ ◇

१. शराबी २. सुराही और प्याला ३. परदेस की शाम

तुमको चाहा तो ख़ता क्या है बता दो मुझको
दूसरा कोई तो अपना सा दिखा दो मुझको
बाग़े - फ़िर्दौस[1] में भी बूए - वतन याद रहे
इत्र मिट्टी का दमे-मर्ग[2] सुंघा दो मुझको
तुमको तो हश्र के दिन लाख में पहचान लिया
मैं भला कौन हूं मेरा तो पता दो मुझको
दिल में सौ शिकवाए-ग़म[3], पूछने वाला ऐसा
क्या कहूं हश्र के दिन यह तो बता दो मुझको

◇ ◇ ◇

क्यों मेरी आहे-सर्द उन्हें नागवार हो
यह वह हवा नहीं जो कलेजे के पार हो
यूं मेरे साथ दफ़्न दिले-बेक़रार हो
छोटा-सा इक मज़ार के अंदर मज़ार हो
तुमको तो शोख़ियों से नहीं चैन रात-दिन
मैं जानता हूं मेरे लिए बेक़रार हो

◇ ◇ ◇

कुछ और दिल्लगी नहीं उस ख़ुश-नसीब से
हम जानते हैं खेलते हो तुम रक़ीब से
बहरे-दुआए-मर्ग[4] उठे किस तरह से हाथ
छुटती नहीं है नब्ज़ हमारी तबीब[5] से

---

१. स्वर्गोद्यान २. मरते-समय ३. दुख की शिकायतें ४. मरने की दुआ मांगने के लिए ५. चिकित्सक

ऐ नासहे-शफ़ीक़[1] रहे कुछ तो छेड़-छाड़
ज़िक्रे-हबीब[2] कम नहीं वस्ले-हबीब से
मानिंदे-बर्क़, मिस्ले-हवा, सूरते-निगाह
अक्सर गुज़र गये हैं वो मेरे क़रीब से
पूछो जनाबे-'दाग़' की हमसे शरारतें
क्या सर झुकाये बैठे हैं हज़रत ग़रीब से

◇ ◇ ◇

दर्द बनकर दिल में आना कोई तुमसे सीख जाय
जाने - आशिक़ होके जाना कोई तुमसे सीख जाय
हर सुख़न पर रूठ जाना कोई तुमसे सीख जाय
रूठकर फिर मुस्कराना कोई तुमसे सीख जाय
वस्ल की शब चश्मे-ख़्वाब-आलूदा[3] को मलते उठे
सोते फ़ितनों को जगाना कोई तुमसे सीख जाय
कोई सीखे ख़ाकसारी की रविश तो हम सिखाएं
ख़ाक में दिल को मिलाना कोई तुमसे सीख जाय
आते-जाते यूँ तो देखे हैं हज़ारों ख़ुश - ख़िराम[4]
दिल में आना दिल से जाना कोई तुमसे सीख जाय
इक निगाहे-लुत्फ़ पर लाखों दुआएं मिल गयीं
उम्र का अपनी बढ़ाना कोई तुमसे सीख जाय
क्या सिखायेगा ज़माने को फ़लक तर्ज़े - जफ़ा
अब तुम्हारा है ज़माना कोई तुमसे सीख जाय

१. प्यारे उपदेशक २. प्रियतम की चर्चा ३. नींद भरी आंख
४. सुन्दर चाल वाले

है तग़ाफ़ुल में भी दुज़दीदा[१] नज़र की ताक-झांक
चोर को रस्ता बताना कोई तुमसे सीख जाय
हर गुनह से तौबा करली जब जवानी हो चुकी
ज़ाहिदो ! जन्नत में जाना कोई तुमसे सीख जाय
महवो-बेख़ुद[२] हो, नहीं कुछ दीन-दुनिया की ख़बर
'दाग़' ऐसा दिल लगाना कोई तुमसे सीख जाय

◇ ◇ ◇

बादे-मुर्दन[3] भी ख़याले-रुख़े-क़ातिल[४] है वही
जिससे हम आंख चुराते थे मुक़ाबिल है वही
इश्क़ का कोई नतीजा नहीं जुज़ दर्दो-अलम
लाख तदबीर किया कीजिए हासिल है वही
ख़िज़्र से पूछे कोई उम्रे-अबद[५] की तकलीफ़
ज़िंदगी नाम है जिस चीज़ का क़ातिल है वही
शोर उठता बुने-हर-मू[६] से "अना लैला"[७] का
क़ैस गर दिल को समझता कि ये महमिल है वही
बारे इतना तो मेरा ध्यान उन्हें रहता है
सबसे कहते हैं मेरे जौर के क़ाबिल है वही
नाम पाते हैं मुहब्बत में, जो मिट जाते हैं
जिसके होने का गुमाँ भी न रहे दिल है वही
हसरतों की है तबाही से तबाही दिल में
जिस जगह क़ाफ़िले लुटते हैं ये मंज़िल है वही

१. छिपी २. आत्म-विस्मृत ३. मरने के बाद ४. क़ातिल की मुख-छबि का ख़याल ५. अनंत जीवन ६. हर रोंगटे की जड़ से ७. "मैं लैला हूं"

जो कहे 'दाग़'-सियहमस्त वो लिख लो दिल पर
इस ख़राबात[१] में इक मुर्शिदे-कामिल[२] है वही

◇ ◇ ◇

जब मये-लाला-फ़ाम[3] होती है, मुझको तौबा हराम होती है
तोड़ता है उसी को वह गुलचीं[४], जो कली दिल की ख़ाम[५]होती है
हर्फ़े-मतलब कहा नहीं जाता, बात उनसे मुदाम[६] होती है
यह सुना है कि बरहमन से भी, शेख़ की राम-राम होती है
पहले ऐ 'दाग़' कुछ न होश आया, दिल की अब रोक-थाम होती है

◇ ◇ ◇

आयी हुई आशिक़ की तबीयत नहीं जाती
आती है तो आकर ये क़यामत नहीं जाती
सर जाता है सर से तेरा सौदा नहीं जाता
दिल जाता है दिल से तेरी उल्फ़त नहीं जाती
अल्लाह से महशर में कहूँगा तेरे आगे
मजबूर हूं मैं इसकी मुहब्बत नहीं जाती
वह आके मेरी क़ब्र पे यह लिख गये मिसरा
काफ़िर तुझे दुनिया की मुहब्बत नहीं जाती
हम चाह के पछताए हैं उस पर्दा-नशीं को
आंखों से किसी वक़्त वो सूरत नहीं जाती

◇ ◇ ◇

दर्द दिल का न कहिए या कहिए, जब वो पूछें मिज़ाज क्या कहिए
आप अब मेरा मुँह न खुलवाएं, यह न कहिए कि मुद्दआ कहिए

---

१. दुनिया २. पहुंचा हुआ फ़क़ीर ३. लाल शराब ४. बाग़बान
५. कच्ची ६. हमेशा

वो भी सुन लेंगे यह कभी न कभी, हाले-दिल सब से जा-बजा कहिए
इन्तहा इश्क़ की ख़ुदा जाने, दमे-आख़िर[1] को इब्तदा कहिए
आ गयी आपको मसीहाई, मरने वालों को मरहबा कहिए
होश जाते रहे रक़ीबों के, 'दाग़' को और बावफ़ा कहिए

◇ ◇ ◇

हमारे दम निकलने में भी इक आलम निकलता है
कि वह मुश्ताक़ हैं देखें तो क्योंकर दम निकलता है
गिला कैसा कहां का रंज किसका जां-बलब होना
जब उसने प्यार से पूछा, "तुम्हारा दम निकलता है?"
कोई क्या चल सकेगा उस ख़िरामे-नाज़[2] से बढ़कर
क़यामत का तुम्हारी ठोकरों में दम निकलता है
गुदाज़े - ग़म[3] से मेरी हड्डियां घुलती हैं, घुल जायें
तेरा अरमान तो ऐ दीदाए - पुरनम निकलता है
इलाही ख़ैर करना आज कोई 'दाग़' के घर से
न बे-शेवन निकलता है न बे-मातम निकलता है

◇ ◇ ◇

पिंदे - वाइज़[4] सुनते-सुनते कान अपने भर गये
क्या इबादत को हमीं हैं, सब फ़रिश्ते मर गये ?
फ़ूट कर रोये जो छाले हो गये जंगल हरे
चश्मे-दरियाबार जब बरसी तो जल-थल भर गये
आदमी ऐसा कहां ? कोई फ़रिश्ता हो तो हो
शेख़ शाहब यह नहीं मालूम तुम किस पर गये

---

१. मृत्युकाल २. मस्त चाल ३. दुख से घुलना ४. उपदेशक का उपदेश

महताबे-दाग़ से संकलन

ग़ज़लें

मैं किसी दिन जो इनायत से बुलाया जाता
पेशतर मुझसे मुझे छोड़के साया जाता
बाग़े-हस्ती से अदम में है सिवा कैफ़ीयत[1]
उम्रे-रफ़्ता से पलट कर नहीं आया जाता
शौक़ ऐसा कि तेरी राह में मरकर भी चलूं
ज़ो'फ़ ऐसा कि नहीं जान से जाया जाता
उठके काबे से न जाता जो सनमख़ाने को
और फिर 'दाग़' कहां बारे-ख़ुदाया जाता

◇ ◇ ◇

दीनो-दुनिया से गये, तुम से गये, जी से गये
आज यूं कूच हुआ है कई मंज़िल अपना

◇ ◇ ◇

ज़मीं से क़दम अर्श पर ले गया, फ़रिश्तों से बाज़ी बशर ले गया
छिपाया बहुत हमने पहलू में दिल, कोई लेने वाला मगर ले गया

◇ ◇ ◇

---

१. मज़ा

ग़म उसपे आशकार किया हमने क्या किया
ग़ाफ़िल को होशियार किया हमने क्या किया
वादे पे इंतज़ार किया हमने क्या किया
भूठे पे एतबार किया हमने क्या किया
हां हां तड़प-तड़प के गुज़ारी तुम्हीं ने रात
तुमने ही इंतज़ार किया हमने क्या किया
कह देंगे हम तो दावरे-महशर[1] से साफ़-साफ़
अच्छों को दिल ने प्यार किया हमने क्या किया

◇ ◇ ◇

तक़लीद से ज़ाहिद की हासिल हमें क्या होता
इंसां न मलक[2] बनता, बंदा न ख़ुदा होता
तौबा है हसीनों को गर पासे-वफ़ा होता
क्या जानिए क्या करते क्या जानिए क्या होता
ग़ैरों की शिकायत पर फ़ुरक़त की हिकायत पर
गर तुम न ख़फ़ा होते तो कौन ख़फ़ा होता
आशिक़ का ज़रा-सा दिल तसकीन ही क्या उसकी
भूठा हो कि सच्चा हो वादा तो किया होता
फ़रियादो-फ़ुग़ाँ से तुम ऐ 'दाग़' बुरे ठहरे
कुछ भी न किया होता कुछ भी न हुआ होता

◇ ◇ ◇

न बदले आदमी जन्नत से भी बैतुलहज़न[3] अपना
कि अपना घर है अपना और है अपना वतन अपना

१. भगवान् २. फ़रिश्ता ३. दुख से भरा संसार

बचा रखना जुनूं के हाथ से ऐ बेकसी इसको
जो अब है पैरहन अपना वही होगा कफ़न अपना
न मरता हूं न जीता हूं असर दोनों दिखाते हैं
लबे-मोजिज़-नुमा[1] अपना, निगाहे-सहरफ़न[2] अपना
ख़बर किसको वो किसका था, वो किसका है, वो किसका हो
समझता है उसी को शैख़ अपना बरहमन अपना

◇ ◇ ◇

इस दिल्लगी में हाल जो दिल का हुआ हुआ
क्या पूछते हैं आप तजाहुल[3] से क्या हुआ
मातम हमारे मरने का उनकी बला करे
इतना ही कहके छूट गये वो, बुरा हुआ
बेगाना था तो कोई शिकायत न थी हमें
आफ़त तो यह हुई कि वो मिलकर जुदा हुआ
बेख़ुद रहे विसाल में बेहोश हिज्र में
क्या जाने कब वो हमसे मिला कब जुदा हुआ

◇ ◇ ◇

शौक़ है उसको ख़ुद-नुमाई का, अब ख़ुदा-हाफ़िज़ इस ख़ुदाई का
वस्ल पैग़ाम है जुदाई का, मौत अंजाम आशनाई का
फंस गया दिल बुरी जगह अफ़सोस, कोई पहलू नहीं रिहाई का
अश्क आंखों में दाग़ हैं दिल में, यह नतीजा है आशनाई का
हंसी आती है अपने रोने पर, और रोना है जग-हंसाई का
बुतकदे की जो सैर की हमने, कारख़ाना है इक ख़ुदाई का

१. जादू डालने वाले होंठ २. जादूगर निगाह ३. उपेक्षा

उसको देखे कोई महफ़िल में ये किसकी ताक़त
हर बशर देखने लगता है बशर की सूरत
दरो-दीवार का जल्वा नहीं देखा जाता
उनके आते ही बदल जाती है घर की सूरत
लिये जाता है हमें जोशे-जुनूँ सहरा को
देखते जाते हैं मुंह फेर के घर की सूरत

◇ ◇ ◇

ऐ वादा - फ़रामोश[1] रही तुझको जफ़ा याद
यह भूल भी क्या भूल है यह याद भी क्या याद
जो रंज उठाये हैं वो भूले नहीं जाते
ग़म दिल से सिवा याद है दिल तुमसे सिवा याद
बंदे से है क्यों पुरसिशे - एमाल[2] इलाही
इंसान को रहती है कहां अपनी ख़ता याद
उस्ताद ने अच्छा सबक़े - इश्क़ पढ़ाया
जब इसको भुलाता हूं ये होता है सिवा याद
माशूक़ से ऐ 'दाग़' तग़ाफ़ुल का गिला क्या
क्यों याद करे तुझको, करे उसकी बला याद

◇ ◇ ◇

मैं वो बीमार हूं जी जाऊँ अगर यह सुन लूं
क़त्ल को आये हैं तलवार मसीहा लेकर
ऐसे लेने से तो है जान का देना अच्छा
क्या जिये गर जिये अहसान किसी का लेकर

१. वादा भूलने वाले २. कर्मों की पूछताछ

अपनी आंखों से तो देखी नहीं दिल की चोरी
क्यों गुनहगार हूं मैं नाम किसी का लेकर

◇ ◇ ◇

यूं बरस पड़ते हैं क्या ऐसे वफ़ादारों पर
रख लिया तूने तो उश्शाक़ को तलवारों पर
अश्के-खिजलत[1] किसी मैकश के जो दोज़ख़ में गिरें
ओस पड़ जाय दहकते हुए अंगारों पर
मोहतसिब तोड़ के शीशा न बहा मुफ़्त शराब
अरे कमबख़्त छिड़क दे इसे मैख़्वारों पर
ऐसी देखी न सुनी आशिक़ी - ओ - माशूक़ी
जान जाती है अजल की तेरे बीमारों पर
'दाग़' का इश्क़ भी दुनिया से निराला देखा
दिल जब आता है तो आता है दिल-आज़ारों[2] पर

◇ ◇ ◇

मज़े लूँ दर्द के मैं थोड़े - थोड़े ज़ुल्म सह सहकर
सितम कीजे तो थम थमकर ज़फ़ा कीजे तो रह रहकर
मिले थे आज मुद्दत में बहुत रोये बहुत तड़पे
वो दर्दे-इश्क़ सुन सुनकर हम अपना दर्द कह कहकर
तड़पने में मज़ा आता है इस कमबख़्त के हमको
अगर दिल यास से बैठा उभारा हमने कह कहकर
ठिकाना क्या है जब जोशे-मुहब्बत जोश पर आये
जनाबे-ख़िज़्र की भी नाव डूबे इसमें बह बहकर

१. शर्म के आंसू २. दिल दुखाने वाले

ये जाना था न आयेंगे तो क्यों जाने दिया उनको
यही ऐ 'दाग़' पछतावा मुझे आता है रह रहकर

◇ ◇ ◇

मेरे दिल को देखकर मेरी वफ़ा को देखकर
बंदा-परवर मुंसिफ़ी करना ख़ुदा को देखकर
दिल लगाना था ज़माने की हवा को देखकर
आशना को देखकर नाआशना को देखकर
हज़रते - ज़ाहिद हमारी छेड़ की आदत नहीं
गुदगुदी होती है दिल में पारसा को देखकर

◇ ◇ ◇

अपनी नज़र में हेच है सारे जहां की सैर
दिल ख़ुश न हो तो कैसा तमाशा कहां की सैर
बाबे - क़ुबूल[1] तक नहीं पहुंची हमारी आह
फिर फिर के कर रही है अभी आसमां की सैर
दुनियां के देखने के लिए आंख चाहिए
जन्नत की सैर से है सिवा इस मकां[2] की सैर
किस पर जमाये आँख ख़रीदार क्या करे
बाज़ारे-हुस्न में है नयी हर दुकां की सैर
क्यों आदमी को आलमे-बाला[3] की हो हविस
बढ़कर नहीं ज़मीन से कुछ आसमां की सैर

◇ ◇ ◇

बरसों रहा हूं मैं किसी नाज़ुक-बदन के पास
क्या जी लगे निहाले-गुलो-यासमन[4] के पास

१. भगवान का द्वार २. स्थान ३. स्वर्ग-लोक ४. फूलों के पौधे

कामिल हो इश्क़े-पाक तो परवेज़ सा रक़ीब
शीरीं को लाये शौक़ से ख़ुद कोहकन के पास
ख़ुसरो के हाथ इश्क़ की दौलत न आ सकी
वह माल कोहकन का रहा कोहकन के पास

◇ ◇ ◇

आज ठहरी मेरी तुम्हारी शर्त, वस्ल की शर्त भी है प्यारी शर्त
शर्त भी और फिर तुम्हारी शर्त, जीत ली तुमने मैंने हारी शर्त
वेसतूं[1] काटता न क्यों फ़रहाद, कि मुहब्बत की थी ये भारी शर्त
दिलरुबाओं को है जफ़ा लाज़िम, दिलफ़िगारों को बेक़रारी शर्त
जोशे-रहमत के वास्ते ज़ाहिद, है ज़रा-सी गुनाहगारी शर्त
बदगुमानों से इश्क़ का दावा, वाह रे 'दाग़' ख़ूब हारी शर्त

◇ ◇ ◇

रहता है रोज़ उसकी मुलाक़ात का खयाल
हो जाय ख़्वाब काश ये दिन-रात का ख़याल
बैठे हैं ख़ानक़ाह में जब दो घड़ी भी हम
आ ही गया है पीरे-ख़राबात[2] का ख़याल
माहे-सयाम[3] भी इसी मौसम में आ गया
रिंदों को इससे बढ़के है बरसात का ख़याल
रंजिश भी हो तो दिल की तसल्ली के वास्ते
करता हूं उनके लुत्फ़ो-इनायात का ख़याल
ऐ 'दाग़' जो कहा है उसे कर दिखायेंगे
इंसान क्या वो जिसको न हो बात का ख़याल

◇ ◇ ◇

---

१. फ़रहाद द्वारा काटा गया पहाड़ २. मधुशाला का अध्यक्ष
३. रमज़ान का महीना

आप जिनको हदफ़े-तीरे-नज़र[1] करते हैं
रात-दिन हाय जिगर हाय जिगर करते हैं
ग़ैर के सामने यूं होते हैं शिकवे मुझसे
देखते हैं वो उधर बात इधर करते हैं
दरो-दीवार से भी रश्क मुझे आता है
ग़ौर से जब किसी जानिब वो नज़र करते हैं

◇ ◇ ◇

उड़ायी ख़ाक तेरी जुस्तजू में हर कहीं बरसों
फिरी है आसमां बनकर मेरे सर पर ज़मीं बरसों
न आया है न आये उनके वादे का यक़ीं बरसों
युंही है आज, कल, परसों मगर मिलते नहीं बरसों
ख़ुदा की शान, अब तुम 'दाग़' की सूरत से जलते हो
वही दिल-सोज़[2] है जो रह चुका है दिलनशीं बरसों

◇ ◇ ◇

एक मैं दिल के न होने से हज़ार आफ़त में हूं
ग़म में हूं, मातम में हूं, हैरत में हूं, हसरत में हूं
होश जब आया तो यह जानो क़यामत आ गयी
ज़िंदगी मेरी जभी तक है कि मैं ग़फ़लत में हूं
वजहे-तस्कीं[3] हो गया फ़ुरक़त में आख़िर इज़्तराब[4]
अब तड़पने की नहीं ताक़त, बड़ी राहत में हूं

◇ ◇ ◇

१. तीरे-नज़र का शिकार २. दुखी ३. संतोष का कारण ४. बेचैनी

छीन कर दिल बुते-ख़ुद-काम लिये जाते हैं
लूट कर राहतो-आराम लिये जाते हैं
नज़र आता हूं न उस बज़्म से उठ सकता हूं
नातवानी से बड़े काम लिये जाते हैं
शिकवाए-मेहरो-वफ़ा[१] किसने कहा, किससे सुना ?
फिर वही आप मेरा नाम लिये जाते हैं
जब तसव्वुर में कोई पर्दानशीं होता है
दिल से आंखों के बहुत काम लिये जाते हैं
मैकशो ! हज़रते-ज़ाहिद की तलाशी लेना
कि छुपाये हुए वह जाम लिये जाते हैं

◇ ◇ ◇

दिल गया तुमने लिया हम क्या करें
जाने वाली चीज़ का ग़म क्या करें
हमने मर कर हिज्र में पायी शिफ़ा
ऐसे अच्छे का वो मातम क्या करें
अपने ही ग़म से नहीं मिलती निजात
इस बिना पर फ़िक्रे-आलम क्या करें
एक साग़र पर है अपनी ज़िंदगी
रफ़्ता-रफ़्ता इससे भी कम क्या करें
कर चुके सब अपनी-अपनी हिकमतें
दम निकलता हो तो हमदम क्या करें
दिल ने सीखा शेवाए-बेगानगी
ऐसे नामहरम[२] को महरम क्या करें

१. प्रिय की कृपा और वफ़ा की शिकायत २. अविश्वसनीय

मार्का[1] है आज हुस्नो-इश्क़ का
देखिए वह क्या करे हम क्या करें
आदमी होना बहुत दुशवार है
फिर फ़रिश्ते हिर्से-आदम क्या करें
कहते हैं अहले-सिफ़ारिश मुझसे 'दाग़'
तेरी क़िस्मत है बुरी हम क्या करें

◇ ◇ ◇

तमाशाए - दैरो - हरम देखते हैं
तुझे हर बहाने से हम देखते हैं
ज़माने के क्या-क्या सितम देखते हैं
हमीं जानते हैं जो हम देखते हैं
हमें चश्मे-बीना[2] दिखाती है सब कुछ
वो अंधे हैं जो जामे-जम देखते हैं
न ईमाए-ख़्वाहिश[3] न इज़हारे-मतलब
मेरे मुँह को अहले-करम देखते हैं
कभी तोड़ते हैं वो ख़ंजर को अपने
कभी नब्ज़े-बिस्मिल में दम देखते हैं
ग़नीमत है चश्मे-तग़ाफ़ुल[4] भी उनकी
बहुत देखते हैं जो कम देखते हैं
उधर शर्म हायल इधर खौफ़ मानै[5]
न वो देखते हैं न हम देखते हैं

१. मुक़ाबला २. देखने वाली आंख ३. इच्छा बताना ४. उपेक्षा की दृष्टि ५. रोकने वाला

उन्हें क्यों न हो दिलरुबाई से नफ़रत
कि हर दिल में वो ग़म अलम देखते हैं

◇ ◇ ◇

जल के ठंडे हुए तेरे ग़म में, हमको जन्नत मिली जहन्नुम में
अरक़-आलूदा[1] रुख़ तेरा शबे-वस्ल, ग़र्क़ है आफ़ताब शबनम में

◇ ◇ ◇

वो दुश्नाम लाखों मुझे दे रहे हैं
मज़े लेने वाले मज़े ले रहे हैं
तसल्ली मेरे दिल को क्या दे रहे हैं
कलेजे में वो चुटकियां ले रहे हैं
वहां ख़ाक उड़ती है अब वाए हसरत
जहां सालहा-साल जल्से रहे हैं
जिधर से वो गुज़रे क़यामत बपा थी
कि नक़्शे-क़दम तक तड़पते रहे हैं
अदम को चले जाएंगे हिज्र में हम
अकेले रहेंगे अकेले रहे हैं
मुहब्बत में अच्छा नहीं दौड़ चलना
जो आगे चले हैं वो पीछे रहे हैं
नसीबों से मिलता है दर्दे-मुहब्बत
यहां मरने वाले ही अच्छे रहे हैं
जिन्हें उसने लिक्खा है हर्फ़े-तसल्ली
वो कम्बख़्त बरसों तड़पते रहे हैं

१. पसीने में भीगा

गयी 'दाग़' के साथ मेह्‌रो-मुहब्बत
फ़क़त अब तो दावे ही दावे रहे हैं

◇ ◇ ◇

दम नहीं, दिल नहीं, दिमाग़ नहीं, कोई देखे तो अब वो 'दाग़' नहीं
गर क़नाअत नहीं है इंसां को, कभी हासिल उसे फ़राग़[१] नहीं
थी ज़माने में रोशनी जिसकी, हाय उस घर में अब चिराग़ नहीं
खोज मिलता है हर मुसाफ़िर का, उम्रे-रफ़्ता का कुछ सुराग़ नहीं
'दाग़' को क्यों मिटाये देते हो, दूर हो दिल से यह वो दाग़ नहीं

◇ ◇ ◇

सुबह तक दिल को दिलासे शबे-ग़म देते हैं
जिसको तुम दे नहीं सकते उसे हम देते हैं
हस्बे-ख़्वाहिश वो कहां रंजो-अलम देते हैं
मांगने वाले को आज़ार भी कम देते हैं
मुझसे वो कहते हैं, परवाने को देखा तूने ?
देख यूं जलते हैं इस तरह से दम देते हैं
मुद्दआ यह है तड़पता ही सिसकता ही रहे
घोलकर आबे-बक़ा[२] में मुझे सम[३] देते हैं
तू वफ़ा करती जो ऐ उम्रे-रवां, क्या होता
बे-वफ़ाई पे तेरी सैकड़ों दम देते हैं
रंज देने का अबस 'दाग़' है शिकवा उनसे
जिसको देता है ख़ुदा उसको सनम देते हैं

◇ ◇ ◇

१. चैन २. अमृत ३. विष

सब लोग जिधर वो हैं उधर देख रहे हैं
हम देखने वालों की नज़र देख रहे हैं
अब ऐ निगहे-शौक़ ! न रह जाए तमन्ना
इस वक़्त इधर से वो उधर देख रहे हैं
कुछ देख रहे हैं दिले-बिस्मिल का तड़पना
कुछ ग़ौर से क़ातिल का हुनर देख रहे हैं
क्यों कुफ़्र है दीदारे-सनम हज़रते-वाइज़
अल्लाह दिखाता है बशर देख रहे हैं
मैं 'दाग़' हूं, मरता हूं, इधर देखिए मुझको
मुँह फेर के यह आप किधर देख रहे हैं

◇ ◇ ◇

यह तो नहीं कि तुम-सा जहां में हसीं नहीं
इस दिल को क्या करूं कि बहलता कहीं नहीं
उस दर पे जिबहसा हो तो फिर कोई क्यों उठे
या संगे-आसतां ही नहीं या ज़मीं नहीं
कहता हूं दिल से और हसीं ढूंढिए कोई
आता है फिर ख़याल कि ऐसा कहीं नहीं
अफ़सोस है कि दर्द भी अब छोड़ता है साथ
यह भी अख़ीर वक़्त कहीं है कहीं नहीं
कहते हैं लोग 'दाग़' से वो बदगुमान हैं
ऐसा तुम्हारी ज़ात से उसको यक़ीं नहीं

◇ ◇ ◇

वाइज़ ! बड़ा मज़ा हो अगर यूं अज़ाब हो
दोज़ख़ में पांव, हाथ में जामे - शराब हो

क्यों करते हो दुनियां की हर इक बात से तौबा
मंज़ूर तो है मेरी मुलाक़ात से तौबा
क्योंकर न करूँ शोरे-मुनाजात[1] से तौबा
आग़ाज़ हो जब चार घड़ी रात से तौबा
यह फ़स्ल अगर होगी तो हर रोज़ पियेंगे
हम मै से करें तौबा कि बरसात से तौवा
वह आयी घटा झूम के ललचाने लगा दिल
वाइज़ को बुलाओ कि चली हाथ से तौबा
दुनियाँ में कोई बात ही अच्छी नहीं ज़ाहिद
इस बात से तौबा कभी उस बात से तौबा
यह 'दाग़'-क़दहख़्वार[2] के क्या जी में समायी
सुनते हैं किये बैठे हैं वह रात से तौबा

◇ ◇ ◇

एक तूफ़ां है ग़मे-इश्क़ में रोना क्या है
नहीं मालूम कि अंजाम को होना क्या है
चार बातें भी कभी आपने घुलमिल के न कीं
इन्हीं बातों का है रोना मुझे रोना क्या है
काश ! मिल जाए तेरा सायाए-दीवार हमें
ओढ़ना क्या है फ़क़ीरों को बिछौना क्या है
तुम पे मर जायेंगे इस आस पे हम जीते हैं
ज़िंदगी शर्त है तो जान का खोना क्या है
उसकी ठोकर से भी कमबख़्त न जागा अफ़सोस
मौत है 'दाग़'-सियहमस्त का सोना क्या है

---

१. ईश-बंदना का शोर २. शराबी 'दाग़'

यादगारे-दाग़ से संकलन

ग़ज़लें

इन आंखों ने क्या-क्या तमाशा न देखा
हक़ीक़त में जो देखना था न देखा
तुझे देखकर वह दुई उठ गयी है
कि अपना भी सानी न पाया न देखा
इन आंखों के क़ुरबान जाऊं जिन्होंने
हज़ारों हिजाबों में पर्दा न देखा
वो कब देख सकता है उसकी तजल्ली
जिस इंसान ने अपना जल्वा न देखा

◇ ◇ ◇

वह जल्वा तो ऐसा है कि देखा नहीं जाता
आंखों को मगर दीद का लपका नहीं जाता
आग़ोश में लूँ, पांव पड़ूँ, खींच लूँ दामन
हाथ आये जो तुझ-सा उसे छोड़ा नहीं जाता
यह दाग़ मिटाये नहीं मिटता नहीं मिटता
यह दर्दे-मुहब्बत नहीं जाता नहीं जाता

◇ ◇ ◇

आशिक़ का दर्द पूछिए माशूक़ से ज़रा
जब मिल गये तो दोनों का दिल एक हो गया
किन हसरतों का कुश्ता[1] हूं अल्ला रे बेकसी
आकर मेरे जनाज़े पे दुश्मन भी रो गया
'सौदा'-ओ-'मीर'-ओ-'ज़ौक़' हों या 'सोज़'-ओ-'दर्द' हों
उसका कहां जवाब है इनमें से जो गया

◇ ◇ ◇

हो असर इतना तो सोज़े-नाला-ओ-फ़रियाद[2] का
हम तमाशा देख लें घर फूंक कर सय्याद का
और तुमसे कुछ नहीं मैं चाहता रोज़े - जज़ा[3]
इतना कह देना ये आशिक़ था मेरी बेदाद[4] का
जब कही नासह ने बात अगले ही वक़्तों की कही
आदमी देखा नहीं इस उम्र में इस याद का
वादा झूठा कर लिया, चलिए तसल्ली हो गयी
है ज़रा-सी बात ख़ुश करना दिले-नाशाद[5] का

◇ ◇ ◇

परी हो, हूर हो, यूसुफ़ हो, आख़िर क्या कहूं तुमको
किसी को हुस्न पर अपने ग़रूर ऐसा नहीं होता
जमाले - यार के देखे से जो होती है कैफ़ीयत[6]
कभी दिल को सरूर आंखों में नूर ऐसा नहीं होता
बशर वह काम करता है फ़रिश्ते कर नहीं सकते
कि जो होता है इससे दूर-दूर ऐसा नहीं होता

१. मारा हुआ २. रोने की जलन ३. हिसाब देने का दिन
४. अत्याचार ५. दुखी हृदय ६. मज़ा

बयान किससे करूं माजराए-दर्दे-जिगर
जिगर को थाम के कहता हूं हाए दर्दे-जिगर
वो बैठें काश कभी मेरे दहने पहलू में
इसी इलाज से तसकीन पाए दर्दे-जिगर
किसे दिमाग़ कि ग्रहसान चारागर के उठाए
यही न ? मौत है बस इंतिहाए-दर्दे-जिगर
तुम्हारे दस्ते-तसल्ली से दर्दे-दिल जो मिटे
तुम्हारे क़दमों में मुझको लुटाए दर्दे-जिगर
उस ग्रंजुमन में ग्रगर जम के बैठ भी जाऊं
हज़ार मर्तबा उठकर उठाए दर्दे-जिगर
जो दर्दे-दिल में गिरफ़्तार था तेरा बीमार
वो रफ़्ता-रफ़्ता हुग्रा मुब्तलाए - दर्दे - जिगर
हमारे मुंह को कलेजा उसी दम ग्राता है
उसे सुनाते हैं जब माजराए - दर्दे - जिगर
किसे नसीब हो ऐसा मुक़ाम रहने को
मेरे जिगर पे न क्यों लोट जाए दर्दे-जिगर
ज़मीं ग़ज़ल की ये है 'दाग़' या शिफ़ाख़ाना
सुना न कान से हमने सिवाए दर्दे-जिगर

◇ ◇ ◇

ज़रा-सी देर करो इम्तहान की तकलीफ़
उठाग्रो मेरे लिए एक ग्रान की तकलीफ़
तेरी निगह ने दिले-तंग में जगह की है
न देखी जायेगी इस मेहमान की तकलीफ़

गुलगश्त में जो देखे हैं गुलपैरहन[1] के फूल
फूले नहीं ख़ुशी से समाते चमन के फूल
झड़ते हैं फूल मुंह से तेरे बात बात में
इनको सुख़न[2] के फूल कहूं या चमन के फूल
उस गुलबदन की याद दिलाने के वास्ते
शब को सितारे बन गये चर्ख़े-कुहन[3] के फूल
झोंका था हाय बादे-ख़िज़ां का कि क़हर था
नकहत के साथ उड़ गये सारे चमन के फूल
हूरों को मैं सुंघाऊंगा बाग़े - बहिश्त में
रखना मेरे कफ़न में कुछ इस अंजुमन के फूल
इंसान ख़ूबरू हो तो हूरों से कम नहीं
ये इस चमन के फ़ूल हैं वो उस चमन के फूल
मेरे सरश्के - ख़ू[4] की न क्योंकर बहार हो
ये दिल की लाग के हैं, ये दिल की लगन के फूल

◇ ◇ ◇

ग़म से कहीं निजात मिले चैन पायें हम
दिल ख़ून में नहाये तो गंगा नहायें हम
जौरे - फ़लक[5] में ख़ाक भी लज़्ज़त नहीं रही
जी चाहता है तेरी जफ़ाएँ उठायें हम
मुमकिन है यह कि वादे पे अपने वो आ भी जाय
मुश्किल है ये कि आप में उस वक़्त आयें हम

१. गुलाबी-वस्त्र पहनने वाला २. सूक्ति ३. बूढ़ा आसमान
४. ख़ूनी आंसू ५. आसमान का अत्याचार

नाराज़ हो ख़ुदा तो करें बंदगी से ख़ुश
माशूक़ रूठ जाय तो क्योंकर मनायें हम
तासीर को सलाम करें दोनों हाथ से
जिस वक़्त अपने हाथ दुआ को उठायें हम
सौंपा तुम्हें ख़ुदा को चले हम तो नामुराद
कुछ पढ़ के बख़्शना जो कभी याद आयें हम
हमसाये जागते रहे नालों से रात भर
सोये हुए नसीब को क्योंकर जगायें हम

◇ ◇ ◇

लब से दुश्नाम[1] तो वो दिल से दुआ देते हैं
घोलकर ज़हर मुझे आबे-बक़ा[2] देते हैं
देख, ऐ चश्मे-गुहरबार, ज़रा अपनी तरफ़
देने वाले कहीं क्या घर को लुटा देते हैं
ऐसे पामालों के मर-मिटने पे रश्क आता है
जिनको मिट्टी तेरे नक़्शे-कफ़े-पा[3] देते हैं
दम चुराते हैं कहीं जान के देने वाले
आंख लड़ते ही यहां जान लड़ा देते हैं
आके बाज़ारे-मुहब्बत में ज़रा सैर करो
लोग क्या करते हैं क्या लेते हैं क्या देते हैं
काबे वालों ने तो ऐ 'दाग़' दिया साफ़ जवाब
अहले-बुतख़ाना[4] हमें देखिए क्या देते हैं

◇ ◇ ◇

१. गाली २. अमृत ३. पद-चिह्न ४. मंदिर के रहने वाले यानी बुत

नासह ने ऊंच-नीच तो समझाई है बहुत
मैं इसको क्या करूं कि ये दिल मानता नहीं
है गर्चे सब की आंख तेरे हुस्न की तरफ़
जल्वा ये कह रहा है, कोई देखता नहीं

◇ ◇ ◇

आए भी हैं, बैठे भी हैं, जाते भी नहीं हैं
मुझ पर ये करम उनके दमे-बाज़पसीं[1] हैं
रिज़वां[2] से ये पूछेंगे दरे-ख़ुल्द[3] में जाकर
हम जिनके लिए आये यहां वो भी कहीं हैं ?
सिजदे से दरे-यार के चमकी है ये क़िस्मत
कुछ ख़ाक के ज़र्रे जो मेरे ज़ेबे-जबीं[4] हैं
ऐ बेख़ुदी - ए - शौक़[5] हमारी है ये हस्ती
दुनिया में हैं इस तरह कि दुनिया में नहीं हैं

◇ ◇ ◇

हम को शिकायतों के मज़े आये जाते हैं
सुन-सुन के दिल ही दिल में वो शरमाये जाते हैं
क़ीमत का फ़ैसला नहीं होता किसी तरह
वो दिल को देख-देख के ललचाये जाते हैं
शोख़ी का भी लगाव है शर्मो - हया के साथ
आंखें मिला-मिला के वो शरमाये जाते हैं

◇ ◇ ◇

१. मरने के समय २. स्वर्ग का हाकिम ३. स्वर्ग ४. माथे की शोभा ५ प्रेम की आत्म-विस्मृति

हम बावफ़ा हैं यह किसी नादान से कहो
ईमान की जो बात है ईमान से कहो
कहता हूं हाले-दिल तो वो कहते हैं बार-बार
कुछ होश से हवास से औसान से कहो

◇ ◇ ◇

जहां उलटा असर हो ज़िंदगी आशिक़ की फिर क्या हो
मुहब्बत तर्क[1] कर दें हम तो दिल में दर्द पैदा हो

◇ ◇ ◇

इसी के साथ मैं भी हूं, ये ले जाये जहां मुझको
न छोड़ूं आसमां को मैं न छोड़े आसमां मुझको

◇ ◇ ◇

हमारी आह से उस संगदिल के दिल में घर क्या हो
किसी ने सच कहा है यह कि पत्थर को असर क्या हो
ख़बर भी है तुम्हें शोख़ी से तुम हर गाम[2] पर क्या हो
यहां क्या हो, वहां क्या हो, इधर क्या हो, उधर क्या हो

◇ ◇ ◇

हमारी क़ब्र पे दो फूल डालते जाओ
किसी ग़रीब की हसरत निकालते जाओ
अजीब लुत्फ़ है इस गुफ़्तगू का क्या कहना
बुरा उदू[3] को कहो मुझपे ढालते जाओ
भरे हुए हैं मेरे दिल में सैंकड़ों अरमां
निकलते जाएं जहां तक निकालते जाओ

१. छोड़ना २. क़दम ३. प्रेम का प्रतिद्वंद्वी

यह पेशतर ज़मीं से है या आसमां से है
क्या जाने इब्तदाए - मुहब्बत कहां से है
इस घर से हम निकलते ही मर जायेंगे ज़रूर
जन्नत भी दो क़दम पे तुम्हारे मकां से है
पीरी में[1] 'दाग़' जोशे-मज़ामीं[2] है रंग पर
इस बाग़ की बहार हमारी खिज़ां से है

◇ ◇ ◇

दिन गुज़ारे उम्र के इंसान हंसते बोलते
जान भी निकले तो मेरी जान हंसते बोलते
मुझको मजबूरी न थी, उसकी ज़बर्दस्ती न थी
ले गया काफ़िर मेरा ईमान हंसते बोलते
यह तो उनकी दिल्लगी है यह तो उनकी बात है
वादा उठते - बैठते पैमान हंसते बोलते
आसमां बरसों रुलाता है, लगा देता है चुप
देख लेता है अगर इक आन हंसते बोलते
इन्क़लाबे-दहर[3] से बाक़ी नहीं ऐसा मुक़ाम
चार मिलकर जिस जगह इंसान हंसते बोलते

◇ ◇ ◇

गर हो सलूक करना इंसान करके भूले
अहसान का मज़ा है अहसान करके भूले
तुमसे वफ़ा जो की है हमसे खता हुई है
ऐसा क़सूर क्योंकर इंसान करके भूले

◇ ◇ ◇

१. बुढ़ापे में २. काव्य का बाहुल्य ३. सांसारिक परिवर्तन

कदूरत[1] दिल की जो फ़रियाद करने से निकाली है
वो कहते हैं मुहब्बत पर हमारी ख़ाक डाली है
हमारी तौबा, ज़ाहिद की जवानी दोनों बेकस हैं
न कोई इसका वारिस है न कोई उसका वाली है
हुआ है चार सिजदों पर ये दावा ज़ाहिदो तुमको
ख़ुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है
उठा लें लुत्फ़ कोई दिन, कहां फिर हम, कहां फिर तुम
बुरा वक़्त आने वाला है, जुदाई होने वाली है

◇ ◇ ◇

चल दिये शक्ल दिखा कर वो, कोई क्या देखे
देखने का ये मज़ा है कि सरापा[2] देखे
बात वह कीजिए जिस बात को सब दिल से सुनें
काम वह कीजिए जिस काम को दुनिया देखे
जिसने देखा हो न आशिक़ को मुसीबत में कभी
मुझको देखे मेरी तक़दीर का लिक्खा देखे
इक झलक भी जो दिखादे तो ग़नीमत जानो
क्या ये मुमकिन है कोई हस्बे-तमन्ना[3] देखे
गो हसीं लाख हों दुनिया में मगर 'दाग़' कभी
देखकर मुंह न कभी पांव किसी का देखे

◇ ◇ ◇

न लिक्खी जाए तब भी शरह ग़म की
ज़बां गर हाथ भर की हो क़लम की

१. मैल २. पूरी तरह ३. इच्छा की तृप्ति की सीमा तक

बड़ी हुज्जत से ठहरी थी क़सम को
जो वक़्त आया तो अब देते हैं धमकी
यही है मुख़्तसर हाले - शबे - वस्ल
ख़ुदा ने दिन बढ़ाया रात कम की
हम उस दर के गदा[1] हैं जिसकी चौखट
ज़ियारत-गाह[2] है दैरो - हरम की
मुझी पर लुत्फ़ है तेरे ग़ज़ब का
मुझी पर मेहरबानी है सितम की
तमन्नाए - दिली की इन्तिहा क्या
बहुत कुछ आरज़ू की फिर भी कम की
जनाबे-'दाग़' फिर आशिक़ हुए हैं
मनाएं ख़ैर हज़रत अपने दम की

◇ ◇ ◇

जिगर के दाग़ पे दिल ज़ार ज़ार रोता है
उसी को होता है ग़म जिसका कोई होता है
चिराग़ शाम का होता है सुबह को ख़ामोश
तमाम रात का जागा सहर को सोता है
ख़ुदा का माल है जान और दिल है दिलबर का
धरा ही क्या है जो आशिक़ गिरह से खोता है
नहीं मजाल उठाये जो इश्क़ की सख़्ती
अगर पहाड़ के पत्थर भी कोई ढोता है
वो पूछते हैं मेरा हाल किस तजाहुल[3] से
ये 'दाग़' कौन है, यह किसका ज़िक्र होता है

१. भिखारी २. तीर्थ-स्थल ३. उपेक्षा

विविध शे'र

दिलबर से जुदा होना या दिल को जुदा करना
इस फ़िक्र में बैठा हूं आख़िर मुझे क्या करना
यह काम नहीं आसां इंसान को मुश्किल है
दुनिया में भला होना दुनिया का भला करना

◇ ◇ ◇

उतरा जो यह उतर गयी गठरी गुनाह की
सर तन से कट गया तो बड़ा पाप कट गया

◇ ◇ ◇

लौ लगाये ख़ुदा से बैठे थे
आगया बीच में ख़याल तेरा

◇ ◇ ◇

वाइज़ की बज़्मे-वाज़[1] में क्या भीड़भाड़ थी
इतने में रिंद[2] आये तो मैदान साफ़ था

◇ ◇ ◇

दुनिया के काम पूरे इंसान से हों क्योंकर
यह तो वही मसल है इक सर हज़ार सौदा

◇ ◇ ◇

एक दिन हम न होंगे दुनिया में
और रह जायगी हमारी बात

◇ ◇ ◇

न छोड़ा कोई ज़िंदा ता-क़यामत
किया है मौत ने पीछा कहां तक

१. धर्म-सभा २. शराबी

मंज़िले-मक़सूद[1] कितनी दूर है
चलते-चलते पांव अपने रह गये

◇ ◇ ◇

बाग़ में पतझड़ हुई मौसम ख़िज़ां का आगया
मैकशो मुज़दा[2] कि बाद इस के बहार आने को है

◇ ◇ ◇

ग़ुंचे चटक रहे हैं पटाख़ों की तरह से
शादी है क्या चमन में उरूसे-बहार[3] की

◇ ◇ ◇

इबादत[4] है यह ज़ाहिदो इन्तिहा की
परस्तिश[5] करो बुतकदे में ख़ुदा की

◇ ◇ ◇

क्या जाने दूसरा है किनारा किधर कहां
दरियाए-इश्क़ का भी समन्दर का पाट है

◇ ◇ ◇

तरस खा ज़रा दिल को तरसाने वाले
इधर देखता जा उधर जाने वाले

◇ ◇ ◇

ख़ाकसारी चाहिए इन्सान को
उसकी पैदाइश हुई है ख़ाक से

◇ ◇ ◇

---

१. लक्ष्य-स्थान २. ख़ुशख़बरी ३. बहार-रूपी दुल्हन ४. आराधना ५. पूजा